卐 **श्री शङ्कराचार्योंविजयतेतराम्** 卐

अमृत - कण

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु भगवान श्री शङ्कराचार्य
श्री मज्जोतिष्पीठाधीश्वर

स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज

ज्योतिर्मठ - बदरिकाश्रम

के आर्ष वचनों का संग्रह

बालब्रह्मचारी श्री महेशजी

श्री शंकराचार्य उपदेश माला - १

अमृत - कण

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु भगवान् शङ्कराचार्य

श्री मज्ज्योतिष्पीठीश्वर

स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज

ज्योतिर्मठ - बदरिकाश्रम

के आर्ष वचनों का संग्रह

बालब्रह्मचारी श्री महेशजी

मूल्य - 15 रुपये मात्र

प्रकाशक :-
ब्रह्मचारी सोमनाथ
श्री ज्योतिष्पीठ शङ्कराचार्य सेवक संघ
श्री ब्रह्मनिवास
१५, अलोपी बाग , प्रयाग।

प्रथमबार सं। २००९
द्वितीयबार सं। २०३५

--

सर्वाधिकार - सुरक्षित

--

मूल्य ३-५०) सजिल्द ५) रु।

मुद्रक

श्री वैष्णव प्रेस
दारागंज , प्रयाग।

श्री हरिः

प्रकाशकीय वक्तव्

प्रातः स्मरणीय धर्मसम्राट अनन्त श्री समलङ्कृत साक्षात् शंकर स्वरूप भगवान् जगद्गुरु श्री शंकराचार्य ज्योतिष्पीठोद्धारक स्वामी श्रीमद् ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम के उपदेशों का प्रकाशन सहज सुबोध भाषा में , वेद वेदान्त सिद्धान्त सार स्वरूप ब्रह्मविद्याका ही प्रकाशन है।

वर्तमान् समय शास्त्र के सिद्धान्त को महापुरुषों के वाक्यों द्वारा सामान्य जन की भाषा एवं राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हिन्दी भाषा में प्रकाशित कर जन समुदाय तक पहुँचाना प्रकाशन का सबसे बड़ा कार्य जनहित में है। आज समय की माँग है धार्मिक प्रकाशन शंका रहित एवं प्रमाण युक्त शास्त्र एवं तर्क

सम्मत होना चाहिए। प्रस्तुत ग्रन्थ भगवत्पूज्यपाद् जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य ब्रह्मलीन श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के मङ्गलमय सर्वजन हितकारी उपदेशों के साथ - साथ गीता , उपनिषद् ब्रह्मसूत्र , शास्त्र पुरणादि प्रामाणिक धर्मग्रन्थों का सार स्वरूप में प्रकाशित किया जाता है। जिसके द्वारा समाज अपनी शङ्काओं का इसे पढ़कर स्वतः निराकरण करके असन्दिग्ध होकर परमोज्ज्वल सर्व हितैषी सिद्धान्तों से लाभ उठा सके।

श्री शङ्कराचार्य उपदेशामृत माला का प्रथम पुष्प अमृत कण प्रथम संस्करण सम्वत २००६ में श्री शङ्कराचार्य उपदेश कार्यालय लखनू से स्वर्गीय मदनेश जी शुक्ल द्वारा प्रकाशित किया गया था। जो इस समय अप्राप्य हो चुका था। परन्तु ब्रह्मलीन आचार्य चरणानुरागी भक्तों के माँग के कारण उसका पुनः प्रकाशन किया जा रहा है। अमृत कण में सत्यतः ब्रह्मलीन आचार्य चरणों के उपदेशों का अमृत कण ही ब्रह्मचारी महेश जी द्वारा संचय किया गया है। इसका प्रत्येक कण जीवत्व से अमरतत्व प्राप्त कराने वाला हैं। हो इसका पठन - पाठन मनन एवं आचरण करेगा वह अपने दुःखादि की निवृत्ति करके आत्मनिष्ठता को प्राप्त करेगा ऐसा पूर्ण विश्वास है।

ब्रह्मलीन गुरुदेव ज्योतिष्पीठोद्धारक जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के प्राचीन उपदेशों का संग्रह दो भागों में श्री " शङ्कराचार्य उपदेशामृत " नामक पुस्तक का दो संस्करण समाप्त हो चुका है वह शीघ्र ही तृतीय संस्करण के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है एवं ज्योतिष्पीठोद्धारक नामक पुस्तक जिसमें ब्रह्मलीन गुरुदेव भगवान् का संक्षिप्त जीवन चरित्र है का प्रथम संस्करण समाप्त है पुनः उसके द्वितीय संस्करण का प्रकाशन किया जा रहा है।

श्री ज्योतिष्पीठ संरक्षक वरिष्ठ जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य श्रीमद् स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज के उपदेशों का संग्रह श्री शङ्कराचार्य उपदेशामृत के स्वरूप में आगामी शीघ्र समय में प्रकाशित करने का संकल्प है भगवान् इस संकल्प को पूर्ण करें ऐसी भगवत् पूज्यपाद श्री गुरुदेव भगवान् के चरणों में प्रार्थना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ " अमृत कण " का संग्रह ब्रह्मचारी महेश जी द्वारा किया गया। आज गुरुदेव भगवान् की जस पताका को समग्र विश्व में फहराते हुए स्वतः महर्षि पद प्राप्त कर वर्तमान् में भावातीत यान एक वैज्ञानिक ध्यान प्रकृया का प्रचालन कर रहे हैं , यह श्री गुरुदेव कृपा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। हमारी मंगल कामना है कि श्री गुरुदेव भगवान् की कृपा से अपने सत्कार्य में अग्रसरित होते रहें।

द्वितीय संस्करण के प्रकाशकीय वक्तव्य में अधिक न लिखकर भगवत् पूज्यवाद् गुरुदेव निवर्तमान् शङ्कराचार्य स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज की कृपा एवं अभिनव शङ्कराचार्य श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द

सरस्वती जी महाराज की प्रेरणा का आभारी हूँ जिसने " अमृत कण " के प्रकाशन कार्य में प्रवृत्त किया। आशा है जन समाज इसका पठन - पाठन कर अपने सुख दुःख निबृत्ति कर अन्त में अपने स्वरूप स्थिति लाभ प्राप्त करेंगे ऐसी गुरुदेव भगवान् के चरणो में प्रार्थना है।

गीता जयन्ती

सम्वत २०३५

ब्रह्मचारी सोमनाथ
पुराण , वेदान्ताचार्य एम। ए। द्वय
साहित्यरत्न
संगीत प्रभाकर
वेदान्त विभागाद्यक्ष
श्री ज्योतिष्पीठ संस्कृत
महाविद्यालयशंकराचार्य
आश्रम अलोपीबाग
प्रयाग

-

प्राक्कथन

भगवान् शङ्कर को जटाओं से होकर आई हुई सुरसरी भागीरथी के पुण्यप्रवाह के कण - कण में जैसे शीतलता , मधुरता , पवित्रता और महापाप् नाशिनी शक्ति स्वभाव से ही विद्यमान्रहती है , उसी प्रकार शङ्कर स्वरूप भगवान् शङ्कराचार्य श्रीमुख से निस्सृत वाणी के सुर - सुरी प्रवाह के कण - कण में शीतलता सरसता मधुरता के साथ - साथ सन्ताप - हारणी कलिमल - नाशिनी महाशक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। जिसने इस सुधा - धारा के दुकूल में बैठकर इससे संस्पृष्ट वायु का भी सेवन किया है , वह इसके सौगन्ध - सौरस्य - मधुर्य में झूमकर मस्त हो उठा है।

भगवान् शङ्कराचार्य के उपदेशामृत - वर्षा का एक - एक बंद मुमुक्षु चातक के लिये स्वाती का अलभ्य बूंद है और बुभुक्षु - संसारी के लिये है भवसागर में डूब जाने से बचाने वाला सबल संबल। इसके कण - कण का यश वैभव गौरव गुणगान गाकर नहीं , लिख पढ़ कर नहीं , कह सुनकर नहीं , स्वयं अनुभव करके ही जाना जा सकता है। पाठकों के जीवन रस में मिलकर ये अमृत कण अपनी महती उपादेयता का स्वयं अनुभव करायेंगे।

इनकी महत्ता पर्वतराज हिमालय की महामहिम महिमा से ऊपर स्थित है और इनकी सूक्ष्मता सूक्ष्म आकाशादि तत्वों से परे सूक्ष्माति सूक्ष्मतम परब्रह्म सत्ता की सुक्ष्मता का उद्घाटन करने वाली है।

अणोरणीयान् महतोमहीयान् का रहस्य खोलने वाले इन उपदेशामृत कणों की महिमा अवर्णनीय है। ऐसे अवर्णनीय - महिमागार - सुधारस - सार - श्रुतिसार रूप यह उपदेशामृत- कण - संचय सर्वावस्था में सर्वोपयोगी

सिद्ध होगा - हिमालय की एकाकी कन्दराओं में समाधिस्थ साधकों को नित्य - समाधि की भूमिका में पहुँचाने के लिये , और संसार के कोलाहलपूर्ण वातावरण में अहर्निश निवास करने वाले मनुष्यों को प्रत्येक परिस्थिति में सुख शान्ति का अनुभव कराने के लिये ये कण अमोघ मन्त्र रूप सिद्ध होंगे।

व्यवहार - परमार्थ - साधक , सुत्र - रूप मन्त्र - रूप इन उपदेशामृत कणों की महिमा इसलिये महान है कि ये आप्त - काम , पूर्णकाम , परमनिष्काम अमलात्मान्तःकरण के स्वाभाविक उद्गार हैं। जिस ऋतम्भरा प्रज्ञा में स्थित होकर मन्त्रद्रष्टा महर्षियों ने अपौरुषेय वेद का प्रकाश पाया और उसका यथार्थ भाव शास्त्रों द्वारा व्यक्त किया , जिस ऋतम्भरा में स्थित होकर दैवी जगत् की कृपा प्राप्त करने के लिये उपयोगी मन्त्र शास्त्र का निर्माण हुआ , और जिस ऋतम्भरा में स्थित होकर ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थों का ज्ञान करामलकवत् प्रत्यक्ष कर लिया है , वही बुद्धि की विशुद्ध सत्वप्रधानावस्था ऋतम्भरा प्रज्ञा इन उपदेशामृत - कणों का उद्गम केन्द्र है ; यही इनके सर्वकल्याणकारी एवं अनन्त महिमावान होने का प्रधान कारण है।

भूमि से बाहर आये हुए अंकुर के द्वारा जिस प्रकार भूमि की उर्वरता का पता चलता है , उसी प्रकार मुख से बाहर आये हुए शब्दों के द्वारा व्यक्तित्व की शक्ति पर निर्भर रहती है। शुद्ध संस्कृत निर्मलान्तःकरण पुरुषों द्वारा प्रोच्चारित मन्त्रों का विलक्षण प्रभाव देख जाता है ; और वही मन्त्र जब अशुद्ध असंस्कृत मलिनान्तःकरण वाले मनुष्यों द्वारा उच्चरित होते हैं तो उनका प्रभाव कुछ भी नहीं रह जाता यह प्रत्यक्ष बात है -

श्री भगवान् शंकराचार्य के शब्दों में जो विलक्षण ओज तेज गम्भीरता हृदयमार्मिकता और विचित्र आकर्षक है वह उनके व्यक्तित्व की अन्तरिक महत्ता का द्योतक है और उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य से सम्पुटित महान तप योग एवं ज्ञान निष्ठ का परिचायक है।

जिन्हें श्रीचरण के उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे जानते हैं कि उनका एक - एक वाक्य कितना प्रभावशाली होता है। प्रत्येक शब्द इतना मधुर और इतना चित्ताकर्षक होता है कि ऐसा लगता है कि बस , भगवान बोलते रहें और हम सुनते रहें। सभी चाहते हैं कि जितनी देर हो सके इनके समीप बैठने को मिल जाय , कुछ बात करने का अवसर मिल जाय ; और हमें अपनी कहने का समय न मिले तो यही बोलते रहें और हम सुनते रहें - ऐसी ही इच्छा सबकी रहती है। साधारण से साधारण और बड़े से बड़े बुद्धिजीवी विश्व के प्रख्यात दार्शनिकों तक का ऐसा ही अनुभव है -

भारतीय दर्शन परिषद की रजत जयन्ती के अवसर पर दिसम्बर १९५० में कल्कत्ता में एकत्रित हुए विश्व के दार्शनिक महारथियों ने जब सभा में महाराज श्री का उपदेश सुना तब उनसे एकान्त में मिलने की इच्छा प्रकट की और भारत के सर्वमान्य दार्शनिक शिरोमणि डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन (जो उस समय मास्को , रूस में भारतीय राजदूत थे और अब भारत के उपराष्ट्रपति हैं) को आगे करके अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक डा। कांगर और डा। शिल्प एक दिन रात्रि में लगभग दस बजे श्री शंकराचार्य शिविर चमड़िया कोठी लेकरोड (कलकत्ता) में आये।

महाराज श्री ऊपर के छत में विराजे हुए थे , कोई प्रकाश नहीं था ; छत से लगे हुए बड़े कमरे ' हाल ' की बिजली भी बुझी हुई थी। छत के बाहर चांदनी छिटकी थी। ओस से बचाव के लिये ऊपर कपड़ा तना था , उसी के नीचे महाराज श्री तख्त पर अँधेरे में बैठे थे। भीतर का हाल भली प्रकार सजा हुआ दिन में भव्य लगता था , उसी में नित्य महाराज श्री का उपदेश हुआ करता था ; किन्तु उस समय अँधेरे

में ऐसा लगता था कि वह हाल एक बड़ी गुफा हो और उसके द्वार पर महाराज का आसन लगा हो। बाहर बड़े - बड़े पेड़ों से घिरी हुई ' लेक ' (झीलों) का सुहावना दृश्य उस चाँदनी में रमणीय तपस्थली का अनुभव करा रहा था। ऐसा लग रहा था , मानो विन्ध्यगिरि की निर्जन रमणीय तपोभूमि - वेधक - की निस्तब्धता रमणीयता और निर्जनता में ही महाराज श्री विराजे हुए हैं। वेधक का तो जो वर्णन हमने सुना है , उस् समय वहाँ उसी का अनुभव हो रहा था। प्रकृति स्तब्ध थी , वाता - वरण शान्त था ; बाहर निज ज्योत्स्ना में खिला राकेश का शीतल शुभ्र प्रकाश था ; या कहें कि निर्मल नीरव निशि की स्तब्धता पर निशीथ का एकाधिपत्य था ; किन्तु उसका प्रभाव हमारी छत पर एक झिन्ने से कपड़े ने रोक रखा था।

हमारे छत पर प्रकाश था , किन्तु चन्द्रमा का प्रकाश नहीं था ; यह उसका प्रकाश था जिससे चन्द्रमा प्रकाशित होता है - अध्यात्मसूर्य जो सूर्य , चन्द्र , अग्नि को प्रकाश देता है , उसका विशुद्ध प्रकाश हमारी छत पर था। हमारे आसपास वह क्षेत्र था जिसके लिये श्रुति कहती है -

न तत्र सूर्योभाति
न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतोभाति
कुतोऽयं मग्निः॥

['It is not lit by the light of the sun, nor by the light of the Moon, nor stars, nor by lightning nor by fire. Only through its Light do all the others shine.' (katha-upanishad, 2 - 2 - 15):

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नैमा विद्युतो भान्ति कुतो'यम्-अग्निः
तमेव भान्तम्-अनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वम्-इदम् विभाति]

वास्तव में सूर्य , चन्द्र , विद्युतआदि में जो प्रकाश है वह सूर्य , चन्द्र और विद्युतकी सत्ता में नहीं है - इन सबका प्रकाशक सर्वाधिष्ठान शुद्ध - चैतन्य ब्रह्म ही है। इस सम्बन्ध में कठोपनिषत् में एक सुन्दर आख्यायिका आती है। कहा गया है कि -

एक समय देवासुर संग्राम में देवताओं की विजय हुई तो उन्हें अहं - भव हो गया। विजय का श्रेय लेने के लिये अग्नि , वायु आदि सभी देवता अपने - अपने पराक्रम का यशोगान करने लगे। देवताओं का इस

प्रकार अहंकर बढ़ा हुआ देखकर सर्वनियन्ता परमात्मा ने सोचा कि अहंकार तो पतन का हेतु होता है ; इसलिए देवताओं को पतन से बचाने के लिए इनका अहंकार चूर्ण कर देना आवश्यक है।

जहाँ देवगण मिलकर अपनी - अपनी विभूतिगाथा गा रहे थे वहीं आकाश में एक विचित्र आकृति वाला यक्ष उत्पन्न हो गया - देवताओं की दृष्टि उस पर गई वे निश्चय न कर सके कि यह क्या है। सोचा कि कहीं कोई दैत्य तो नहीं है। उसका पता लगाने के लिए सबने अग्निदेव से कहा कि आप बड़े ही पराक्रमशाली हैं , आप ही जाकर पता लगाईये कि यह कौन है और यहाँ इसके आने का क्या कारण है। अग्निदेव यक्ष के निकट गये। यक्ष ने पूछा कि तुम कौन हो ? अग्नि ने बड़े गर्व से कहा -- मैं अग्नि हूँ और ' जातवेदा ' नाम से जगत् में विख्यात हूँ। इस प्रकार गर्वीला उत्तर सुनकर यक्ष ने एक तिनका अग्नि के समाने रख दिया और कहा कि इसे जला दो। अग्नि ने बार - बार प्रयत्न किया , अपनी पूरी शक्ति लगा दी , पर वह तृण जला नहीं। अग्नि लज्जित होकर वापिस लौट आये तब देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ।

सब ने मिलकर वायु को प्रेरित किया ; कहा कि आप भी बड़े प्रभाव - शाली हैं , आप इसका पता अवश्य ही लगा लेंगे। वायुदेव यक्ष के निकट पहुँचे। यक्ष ने पूछा - तुम कौन है ? वायु ने कहा है - हम वायुदेव हैं। यक्ष ने पूछा - तुम्हारी क्या सामर्थ्य है ? वायु ने उत्तर दिया - मैं क्षण भर में समस्त भूमण्डल को यहाँ का वहाँ कर सकता हूँ ; चाहे जिसे चाहे जहाँ उड़ाकर फेक सकता हूँ। यक्ष ने वही तिनका वायु के सामने रख दिया और कहा - इसे उड़ा ले जाओ। वायु ने सरलता से उड़ाना चाहा , तिनका हिला तक नहीं , वायु ने अपना पूरा बल लगाया , पर तिनका उस स्थान से टसमस भी नहीं हुआ। वायु शिथिल होकर लौट आये।

सब देवता बड़े विस्मय और भय में पड़ गये। सब ने मिलकर इन्द्र से कहा - आप देवराज हैं , आप हम सब में बुद्धिमान् , यह कोई भयंकर

आपत्ति हम लोगों पर आ रही है ; कृपा करके युक्तिपूर्वक ढंग से पता लगवाइए कि यह क्या है। इन्द्र अपना पराक्रम बटोरकर यक्ष के समीप पहुँचे। यक्ष ने इनकी इतनी अवहेलना की कि वह इनसे बोला तक नहीं। और वहीं अन्तर्ध्यान हो गया। तब इन्द्र का अभिमान जाता रहा। उसने विनम्र होकर भगवती का ध्यान किया और प्रार्थना की। तब विद्यादेवी ने उमा के रूप में प्रकट होकर इन्द्र को समझाते हुए कहा -

' यह यक्ष जो तुम लोगों के सामने प्रकट हुआ था वह सर्वनियन्ता परब्रह्म परमात्मा ही था ; उसी की सत्ता से समस्त जगत सत्तावान् है ; उसी की शक्ति से अग्नि , वायु आदि देवगण शक्तिमान होते

हैं ; उसी के प्रकाश से सूर्य चन्द्र में प्रकाश है , उसी की शक्ति से ही आप लोग शक्तिमान् है ; यह जो आप लोगों की विजय हुई है वह उसी की विजय है। आप लोगों को अनावश्यक अहंकार हो गया था इसी हेतु से आपका दर्प - दलन करने के हेतु वह यक्ष के रूप में प्रकट हुआ था। आप लोगों को चाहिए कि जिसकी इच्छा के विरुद्ध एक तृण भी नहीं हिल सकता , जो सूर्य चन्द्र आदि सबको अपने प्रकाश से प्रकाशित कराता है उसी सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाश परब्रह्म परमात्मा की ही प्रधानता मानें , व्यर्थ का अहंभाव अपने मन में न अन्ने दें।'

तात्पर्य यह कि सूर्य चन्द्र आदि का प्रकाश उसी स्वप्रकाश चिन्मय परब्रह्म परमात्मा का प्रकाश है ; स्वतः सूर्य चन्द्र में कोई प्रकाश नहीं। यही कारण है कि हमारी छत पर जहाँ उस सर्वप्रकाशक सर्वाधिष्ठान परब्रह्म सत्ता का प्रत्यक्ष प्रकाश था वहाँ चन्द्र - किरणों एक पतले से कपड़े के पार ही रुक गई थीं। लौकिक व्यवहार की दृष्ट से हमारे आस पास छत पर अँधेरा सा ही था किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से छत प्रकाशित थी वहाँ गुरुदेव की उस चिरप्रदीप्त अध्यात्म ज्योति का पूर्णप्रकाश था जिसका माधुर्य समास्वादन करने के हेतु बड़े बड़े महामुनीन्द्र जन एकान्त का समाश्रयण करते हैं।

(छ)

साधकगण अपनी एकान्त ध्यानस्थली में जिस अध्यात्म चन्द्रिका का माधुर्य रसास्वादन करते हुए उसमें विभोर होकर अपने को भूल जाते हैं वही , ठीक वही , अनुभूति गुरुदेव के चरणसान्निध्य में , स्तब्ध निशा में , आंखें खोले हुए जाग्रत की पूर्णता में जब होती हैं तो वह अतुलित आनन्दमय अध्यात्म प्रवाह सर्वत्र भीतर बाहर ओतप्रोत होकर मानस मराल को विभोर कर देता है। निश्चय ही गुरु चरण सान्निध्न में वह अवस्था अपने को भूल जाने वाली समाधि की अवस्था से बहुगुणित विशिष्ट होती है। उस समय समाधि - सुख कोटिगुणित होकर जागृत में प्राप्त होता है , और वह होता है गुरुचरण कृपा से जीवन्मुक्ति का अनुभव जाग्रत में अविच्छित्रतया समाधि जनित सुखानुभूति ही तो जीवन्मुक्ति है जिसमें विभोर रह कर महात्मा जन ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं।

उस समय छत पर एकान्त में गुरुसान्निध्य में बस यही अनुभूति थी , अलौकिक आनन्द था , आल्हाद था , हृदय गद्गद था उछल रहा था प्रेम प्रेम समुद्र आनन्द समुद्र उमड़ रहा था , आत्मा की आनन्दमयिता मानो भीतर से उमड़ रही थी , और बाहर से गुरुदेव का मौनावलम्बन मय मधुमय प्यार समुद्र अथाह था , लहरें उसकी बाहर से छलक कर भीतर जा रही थीं , भीतर से टकराकर उमड़ कर फिर बाहर चरणों में पड़कर वहीं किलोल सी करने लग जाती थीं। लग रहा था कि हस्त पाद कर्णादि सभी इन्द्रियों के साथ मन बुद्धि सब उस आनन्द से भर उठे हैं , रोम रोम उस महानन्द आत्मानन्द ब्रह्मानन्द की अनुभूति से गद्गद हो उठा है। मानो उस अलक्ष्य अगोचर अव्यपदेश्य अतीन्द्रिय ब्रह्म सत्ता की सच्चिदानन्दमयिता ही गुरु कृपा कटाक्ष से इन्द्रियगम्य , मनोगम्य ,

बुद्धिगम्य होकर इन्द्रिय मन बुद्धि सबको एक साथ ही अनुभूत हो रही थी ; सम्पूर्ण सूक्ष्म स्थूल शरीर आनन्द विभोर था ; बस आनन्द था , आनन्दातिरेक था और थे सम्मुख समासीन सद्गुरुदेव।

सामने बाहर झील की जल तरङ्गें किनारे से छपछपाती हुई सुप्त निद्रित दूब को मानो थपकियाँ देकर निर्मल चांदनी के शुभप्रकाश का आनन्द लेने के लिये जगा रहीं थीं , और इधर गुरुदेव के श्री पद रख मणि गण ज्योति से देदीप्यमान उदीयमान प्रत्यक्ष अनुभूयमान परमार्थ - सूर्य की अध्यात्म तरंगें शिष्य के चिरसुप्त हृदय को धक्के लगा कर जगा रही थी ; नीद से वह जाग रहा था , उठ रहा था , भ्रम उसका मिट रहा था , सामने का कुहरा हट रहा था , लम्बा मार्ग शीघ्रता से पार हो रहा था , लक्ष्य दिखने लगा था , दिख रहा था सामने ही था किन्तु अभी उस तक पहुँचना बाकी था , किनारा आया नहीं था कि मांझी ने लंगर डाल दिया।

गुरुदेव की उस महान कृपा का अनुभव करते रहने के लिये , उस महदानन्द का कुछ समय तक समास्वादन करते रहने के लिये बड़ा भाग्य चाहिये। कुछ ही समय बीता होगा कि प्रारब्ध ने एक झटका दिया ; और उस अभिनव गुण्ठित अध्यात्म बीणा की मधुर झंकार सहसा बन्द हो गयी। द्वारपाल ने आकर कहा - डा। राधाकृष्णन जी के साथ इंग्लैंड और अमेरिका के दो दार्शनिक भगवान के दर्शनार्थ आये हैं।

कहाँ उस अलभ्य अध्यात्म राज्य की अनन्तानन्दानुभूति और कहाँ द्वारपाल के ये शब्द ! मानो ऊपर पहाड़ गिर पड़ा हो ; असह्य वेदना हुई ; किन्तु अन्तःकरण जिस परम शान्ति स्वरूप अध्यात्म लहरी में निमग्न था उसने इस झटके को संभाल लिया - मन में भाव आया - अच्छा है , ये लोग दुनिया के माने हुये दार्शनिक हैं इनके आने पर महाराज का कुछ बौद्धिक चमत्कार होगा और अभी तक जो यहाँ 'यतो वाचो निवर्तन्ते' का वातावरण था वही अब शब्द बनकर व्यक्त होगा मन ने कहा - चलो अब इसका दूसरा रूप अनुभव करेंगे।

पाठक ध्यान दें कि सद्गुरु सान्निध्य कितना आनन्ददायक होता है। किस प्रकार अपने आश्रित साधकों को गुरुजन भिन्न भिन्न रूप में अनुभव से कितने रूपान्तर भेद से उसका अनुभव कराकर साधक को निस्संदिग्ध बनाते हैं। सद्गुरु सानिध्य की यही महिमा है।

आगन्तुकों की सूचना देकर द्वारपाल खड़ा था। लगभग एक मिनट बाद भगवान ने कहा यह कौन मिलने का समय है ! कोई समय तो दिया नहीं गया था !!

इतना सुनते ही मै सतर्क गया ; ऐसा लगा कि महाराज कहते ही हैं कि ' कह दो नहीं मिलेंगे '। क्योंकि ऐसा प्रायः होता है कि ' यह कौन समय है मिलने का ' ' समय तो दिया नहीं गया था ' इन शब्दों के बाद यही शब्द निकलते हैं कि ' कह दो नहीं मिलेंगे '। न मिलने के शब्द श्री मुख से निकलने के पहले ही मैंने धीरे से प्रार्थना रूप में कहा -

भगवान उचित समझें तो दो चार मिनट दे दें ; दिन में इन लोगों को और लोग घेरे रहते होंगे , रात्रि में भगवान से एकान्त में मिल सकेंगे इसी लक्ष्य से आये होंगे। महाराज श्री ने कहा - अच्छा तो लिवा लाओ। इन लोगों के ऊपर आने पर हाल की एक बत्ती जला दी गई जिससे छत पर भी कुछ प्रकाश हो गया।

दार्शनिकों ने देखा कि भारत का अध्यात्मनिष्ठ महात्म जिसने बाल्यकाल से अपना जीवन घन्घोर बन पर्वंतों की कन्दराओं और गुफाओं में बिताया था। आज अस्सी वर्ष की अवस्था में धर्म सिंहासन पर समासीन रहने पर भी अपने निजी समय में गुफाओं के जैसे अन्धकार में ही रहना पसन्द करते हैं।

आगे डा। राधाकृष्णन थे उनके पीछे डा। कांगर और उनके बगल में डा। शिल्प थे ; उनके पीछे एक दो बच्चे लोग भी थे (जिनके यहाँ डा। राधाकृष्णन ठहरे हुए थे उन्हीं के लड़के लड़कियाँ)। महाराज श्री के तखत के सामने थोड़ी ही जगह थी ; सामने पादुका की चौकी रक्खी थी और उसके सामने एक कालीन पड़ा था। सब लोग एक के बाद एक प्रणाम करके सामने बैठे गये।

महाराज श्री ने पूछा - ' आप लोगों का परिचय '

डा। राधाकृष्णन ने - डा। कांगर और डा। शिल्प का परिचय दिया और कहा भारत् में आप लोग पहली बार ही आये हैं। परिचय समाप्त

हुआ ही था डा। कांगर ने महाराज श्री की ओर देखते हुए कहा

We would like to hear something on Vedant. Would your Holiness help as in realisition?

डा। राधाकृष्णन ने महाराजा से कहा कि डा। कांगर वेदान्त के सम्बन्ध में कुछ सुनना चाहते हैं। तत्व दर्शन के लिए ये महाराज की सहायता चाहते हैं।

महाराज श्री ने कहा - वेदान्त प्रतिपाद्य तत्व तो स्वतः सिद्ध पदार्थ है ; वह स्वयं प्रकाश है उसको प्रकाशित करने के लिये अन्य किसी के महयोग की आवश्यकता नहीं।

डा। राधाकृष्णन ने इसका भाव अँग्रेजी में डा। कांगर को समझाया। इस पर डा। कांगर ने कहा - वेद शास्त्र में जो तत्व प्राप्ति के साधन वर्णन किये गये हैं वे व्यर्थ तो नहीं कहें जा सकते ?

महाराज श्री ने कहा - साधन जो हैं वे ब्रह्म को प्रकाशित् करने के लिये नहीं हैं। उनका तात्पर्य केवल अविद्या की निवृत्त में हैं। साधन अविद्या का नाश करते हैं ब्रह्म का प्रकाश नहीं। जो स्वतः प्रकाश है उसको देखने के लिये किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं जैसे सूर्य स्वतः प्रकाशमान् है उसको देखने के लिए किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं। सूर्योदय के पहले अरुण का उदय होता है ; किन्तु अरुणोदय केवल रात्रि के अन्धकार को हटाता है , वह सूर्य को प्रकाशित नहीं करता ; सूर्य तो स्वयं प्रकाश है। जितने साधन हैं सब अविद्या को ही निवृत्ति करते हैं आत्मा का प्रकाश नहीं करते। आत्मा तो स्वतः प्रकाश है।

अधनिशा के उस स्तब्ध प्रशान्त वातावरण में अरुणोदय के एक छोटे से उदाहरण से ब्रह्मविद्या का यह सैद्धान्तिक सारगर्भित उपदेश सुनकर डा। राधाकृष्णन गद्गद हो उठे। सहसा बोल पड़े - ' कितनी सरलता से कितने गूढ़ प्रश्न को महाराज ने हल कर दिया। हम लोग महीनों मनन

करके इस पर दो घंटे बोलते फिर भी यह विषय इतना स्पष्ट न हों सकता। जितना महाराज ने दो मिनट में कर दिया।

महाराज श्री के उत्तर पर डा। राधाकृष्णन को गद्गद देखकर डा। कांगर की उत्सुकता बहुत बढ़ गई। उन्होंने डा। राधाकृष्णन से कहा -

आप तो उत्तर का आनन्द लेने लगे मालूम होता है ; महाराज ने क्या कहा है ? डा। राधाकृष्णन ने कहा - डा। कांगर ! जो महाराज ने कह है वह अनुभव करने की चीज है , इसी के किये गुरुओं के निकट रहा जाता है। यह कहकर महाराज श्री का उत्तर डा। राधाकृष्णन ने उनको अँग्रेजी में समझाया और अन्त में महाराज से कहा कि -

' हम तो आजकल इधर राजनीतिक प्रपंच में फँस गये हैं , नहीं तो कुछ समय महाराज के समीप रहने योग्य है ; फिर भी हमारी ऐसी इच्छा है कि जब महाराज श्री ज्योतिमठ में हों तब हम दो मास तक महाराज के सान्निध्य में रहें।'

महाराज ने कहा - हाँ , ज्योतिर्मथ अच्छी जगह है।

इसके बाद श्रीचरण को कष्ट के लिये क्षमायाचना करते हुये अति विनम्र एवं शिष्टाचारपूर्ण भव से सब लोग बिदा हुये।

महाराज श्री ने इन लोगों से तीन चार वाक्य ही बोले होंगे परन्तु प्रत्येक शब्द जो निकल रहा था। वह अध्यात्म से ओत - प्रोत था। प्रत्येक शब्द की ध्वनि शब्द ब्रह्म का बोध करा रही थी। उस समय शब्द शक्ति का विलक्षण प्रभाव प्रत्यक्ष अनुभव में आ रहा था।

डा। कांगर ने प्रश्नों का महाराज श्री ने जो अति संक्षेप में उत्तर दिया उसका भाष्य किया जाय तो एक विशालकाय ग्रन्थ बन जायगा। किन्तु पाठकों के मनोरंजन के लिये यहाँ संक्षेप में ही उसके एक गो पहलू उपस्थित करते हैं -

डा। कांगर न वेदान्त तत्व को अनुभव करने की बात उठाई। महाराज श्री ने सोचा कि पश्चिम के दार्शनिक तो Ultimate Reality ब्रह्मतत्व की Nonperceivable जिसका अनुभव नहीं किया जा सकता

ऐसा मानते हैं ; इसीलिये इनका जैसा विश्वास है उसी के अनुसार ही इन्हें उत्तर भी देना चाहिये ; परन्तु साथ ही साथ यह भी बात थी कि शन्कराचार्य से वेदान्त के सम्बन्ध में प्रश्न हुआ है इसलिए उत्तर सैद्धान्तिक भी होना चाहिए। इसलिए प्रश्न साधन परक होते हुए भी महाराज ने उसका उत्तर सिद्धान्त पक्ष में इतना ऊँचा उठाया कि फिर उसके आगे बोलने का अवकाश ही नहीं रहता।

ऐसा कई चार देखा गया है कि महाराज श्री कि दृष्टि में कोई अनधिकारी ठीक प्रश्न करके जब विषय जानना चाहता है तो उस विषय के सम्बन्ध में सिद्धान्त को इतने ऊँचे स्तर पर ले जाकर बोलते हैं कि उस समय तो प्रश्नकर्ता गद्गद हो जाता है , परन्तु उसको वास्तव में हो चाहिये था वह मेला नहीं , यह उसे बाद में पता चलता है। किसी को कुछ न देते हुए भी उसे मुग्ध कर देना , यह श्रीचरण की बहुत बड़ी विशेषता है जिसके कारण जो उनके सामने आता है वह गद्गद होकर ही लौटता है !

डा। कांगर ने जब तत्व को अनुभव करने के लिये महाराज श्री से सहायता मांगी तो महाराज कह सकते थे कि इस प्रकार से मनन करते हुए इस प्रकार से निदिध्यासन करते चलो तत्वानुभव हो जायगा। यदि महाराज श्री बताना चाहते तो यही सीधा मार्ग था। किन्तु कोई तत्व की बात बताने की इच्छा तो थी नहीं ; क्योंकि तत्व बोध के लिये उपदेश का अधिकारी तो साधन चतुष्टय सम्पन्न जिज्ञासु ही होता है ; डा। कांगर और डा। शिल्प अमेरिका के ख्याति प्राप्त दार्शनिक हों परन्तु उन्हें साधन चतुष्टय सम्पन्न नहीं कहा जा सकता ; इसलिए महाराज श्री जिनकी गणना बहुत पुराने जमाने के गुरुओं की कोटि में है , इनकी दृष्टि में ये लोग कब तत्व ज्ञान के उपदेश के अधिकारी हो

सकते हैं ! इसलिये महाराज श्री ने उस प्रश्न का उत्तर देते हुए उस बात को एक ऐसा चक्कर दिया कि प्रश्न ही असंगत सिद्ध हो गया। प्रश्न हुआ कि ' ब्रह्म

(ड)

का अनुभव करने में सहायता करिये '। उत्तर हुआ कि ' ब्रह्म का अनुभव करने के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता

ही नहीं है क्योंकि वह स्वयं प्रकाश है ' महाराज श्री ने स्पष्ट कहा नहीं कि तुम्हारा प्रश्न असंगत हुआ , डा। कांगर से प्रश्न ही करते नहीं बना।

पुस्तकों से पढ़कर सिद्धान्त जान लेना और योग द्वारा प्रत्यक्षानुभूति करके उसे जानना , इन दो बातों में जो अन्तर है वह यही है जो इस प्रश्नोत्तर से स्पष्ट होता है। अपरोक्ष ज्ञानी के समक्ष साधारण परोक्ष ज्ञानी के शब्द विषयानभिज्ञता का ही परिचय कराते हैं।

यही कारण था कि महराज श्री प्रश्न के उत्तर में एक वाक्य बोलकर ही मौन हो गये। प्रश्न से ही महाराज ने समझ लिया कि इन्हें वेदान्त का ज्ञान अति स्वल्प है इसलिये इनके समक्ष विषय का उद्घाटन करना व्यर्थ ही रहेगा। इसीलिये एक सिद्धान्त वाक्य भी कह दिया और तात्पर्य में प्रश्न की निरर्थकता भी सिद्ध कर दी और चुप हो गये। दुबारा जब रूपान्तर से फिर वही प्रश्न दुहराया गया तो उसके उत्तर में श्रीचरण ने भी दूसरे शब्दों में (अरुणोदय का एक छोटा सा उदाहरण देकर) प्रायः उत्तर दिया और पुनः दुहराया कि ब्रह्म स्वतः प्रकाश है उसको समझने के लिये किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार पश्चिम के ख्यातिप्राप्त बुद्धिमान दार्शनिकों के प्रश्नों के समान महाराज श्री ने उत्तर दिया , इस बारीकी को डा। राधाकृष्णन समझकर गद्गद हो उठे। और घन्हें एक बार इस बात का गर्व हुआ कि हम बाहर विदेशों में जाकर दार्शनिक क्षेत्र में भारत की जिस सर्वोत्कृष्टता की महिमा उपस्थित करते हैं उस श्रेष्ठत के प्रतीक आज भी हमारे देश में विद्यमान हैं जिन्हें हम सबके समक्ष रख सकते हैं। जिन शब्दों को डा। राधाकृष्णन ने डा। पाल के अध्यक्षीय - भाषण ; में सुना था

(ढ)

उनका आज उन्होंने स्वयं अनुभव किया। अभी चार दिन पूर्व २२ दिसम्बर को इसी हाल में भारतीय दार्शनिक परिषद की एक बैठक में अपने अध्यक्षीय भाषण में डा। पाल ने कहा था -

To-day we are here to do homage to his Holiness, Shri Jagatguru Shankaracharya Ananta Sri Vibhusita Swami Brahmananda Saraswati of Jyotirmath, Badarikasram

- the Superman, the seer, the sage, who is one of the few rare individuals amongst the billions of the citizens of the world, whom we would unhesitatingly choose if and when we would be called upon to describe the spiritual and cultural capital of our nation, if and when the world would feel the need of evoking the part our nation can play in it, who is beyond any controversy, one of the rare few who have contributed and can still contribute something to universal peaceful progress, who have risen by their talent and genius above their fellow countrymen, above their fellowmen of the world and have thus gained a place for themselves at the head of humanity, at the extreme spearhead of civilization.

Standing here at a time when everywhere in the world everybody feels not a little bewildered at an immense increase in the sense of human power, we can hardly exaggerate the necessity of teachers like his Holiness the Jagatguru.

You will pardon me if I venture; at this assemblage of eminent philosophers, to refer to an aspect of our Hindu Philosophy which seems for the time being, to be too much belittled by the power-intoxicated world.

Our Vedic philosophers.... ....

The civilized world today is indeed in an age of spiritual chaos, intellectual doubt and political decadence. Civilized man today no doubt has acquired immense scientific and mechanical resources, but seems hopelessly to lack the wisdom to apply them to the best advantage. This is why we witness a growing sense of frustration seizing every mind almost everywhere. The whole world seems to be suffering from an epidemic of hysteria................

We do not know which way the truth lies. Perhaps even here it will be true to say that every truth, however true in itself, yet taken apart from others, becomes only a snare. In reality, perhaps, each is one thread of a complex weft, and no thread can be taken apart from the weft. But this much seems to be certain that there is this paralysing fear and alarm almost everywhere in the world-everywhere even the most powerful minds have not succeeded in escaping it altogether. Everywhere humanity is beginning to feel that we are being betrayed by what is false within, - we are almost giving way to find ourselves spiritually paralysed.

This indeed is a deadly malady. The patient here must first of all be brought to see that he is sick and to want to get well and to do of himself what is needed to get well. Perhaps something is away both with the heart and the brain.

The world needs philosopher-teachers like His Holiness Shri Jagatguru Shankaracharya who can reveal the world of values and can make us realize that, that is the real world. The world badly needs guidance to a creed of values and ideals. The world needs a teacher who can dispel our fears and can remove all sense of frustration or least in so far as it is only an internal malady.

We need a teacher who has succeeded in gaining for himself freedom to be along, who does not require any power, who can cure both heart and Brain. We are in an age in which the meeting of the traditionally alien cultures of the Orient and the Occident has become inevitable. We need a teacher with sufficient gift of intellectual imagination and divine inspiration who can help the smooth working of this meeting, the working out of this meeting in such a way that the values of each civilization complement and re-in-

force rather than combat and destroy those of the other. We cannot avoid the sight of conflicting economic, political, religious, artistic and other ideological doctrines and the consequent fear and feeling of helplessness, We need a teacher who can teach us how to get out of the crisis in valuation in this realm of conflict, who can teach us how to avert the danger of spiritual paralysis facing us.

His Holiness Sri Jagatguru Shankaracharya, having gained the freedom to be alone, did also fully realize the means of escaping from loneliness. In these days of doubts and difficulties if we can at all safely turn our eyes for guidance to any one it should be to this superman the overpowering influence of whose genius appears indeed in the light of divine inspiration, the superman who has succeeded in ridding himself of any ambition for power.

Saintly guidance from a seer like Sri Jagatguru alone can ensure an abiding peace.

वास्तव में मानव आज दुखी है - आज का मनुष्य अशान्त है और शान्ति चाहता है। जब उसके समक्ष एक व्यक्तित्व आता है जिसमें शान्ति का प्रत्यक्ष दर्शन है , तो वह आशा भरी आँखों से उसकी ओर निहारता है , चाहता है कि उसकी शान्ति से अपनी कुल अशान्ति मिटा ले। जहाँ श्रीचरण का पदार्पण होता है वहीं यह अनुभव होता है। अच्छे - अच्छे अनुभवी और बुद्धिमान लोगों की यही प्रार्थनाएँ होती हैं क महाराज वष्त्र को शान्ति का सुनिश्चित पथ प्रदर्शित करें।

इसका कारण यही है कि इन्होंने अपने व्यक्तित्व को बनाया है। एक ऐसे साँचे में अपना जीवन ढाला है कि जहाँ से जिस पहलू से वह देखा जाता है वहीं से इसमें चमक दिखलाई देती है। इस

दिव्य व्यक्तित्व को कवि - कोविदों ने वैदिक सिद्धांतों का साकार विग्रह कहा है। यह जीवन त्रितापशून्य परमानन्दमय विशुद्धानन्द स्वरूप है। इसके सम्बन्ध में ऊहापोह करते हुए मन जब उसके निकट , उसके वास्तविक क्षेत्र में पहुँचता है तो वह आनन्द की उमंग से भर जाता है ; क्योंकि वह क्षेत्र आनन्द का क्षेत्र है , विशुद्धानन्द ही वहाँ एक रस व्याप्त है , एकमात्र आनन्दस्वरूप आत्मा की ही वहाँ त्रिकालावाधित सत्ता है ; वहाँ पहुँचकर मन (संकल्प - विकल्पात्मक) मन नहीं रह जाता , तद्रूप आनन्दस्वरूप होकर आत्मस्वरूप होकर रह जाता है। इसीलिए महाराज श्री के जीवन चरित्र लेखन के समय जाग्रत में ही समाधिसुख का अनुभव होता है। यह एक विलक्षण आनन्दमय आह्लाद है जो हृदय में गुदगुदी पैदा करता है और अपने ही रंग में ढालकर मन , बुद्धि , चित्त , अहंकार सभी को आनन्द से आप्लावित कर देता है।

महाराज श्री के सम्पूर्ण जीवन - चरित्र लिखने के लिये लेखनी उत्सुक है और हृदय भी साथ दे रहा है , किन्तु यहाँ इसके लिये पर्याप्त अवकाश नहीं। यह तो एक पुस्तक की छोटी सी भूमिका है , इसमें जीवनी का विस्तार कहाँ तक किया जा सकता है। किन्तु प्रत्यक्ष है कि यह एक आदर्श और पूर्ण पुरुष का जीवन है। यह जीवन - चरित्र केवल पूर्ण पुरुष की जीवनी ही नहीं , यह तो ब्रह्मस्वरूप की अनन्तानन्दमयी सर्वोन्मुखी दिव्य प्रतिभा का प्रत्यक्ष स्वरूप दर्शन है।

यह जीवन - चरित्र सत्तत्व की सीमान्त झाँकी है , चितत्व चेतन आत्मा का पारमार्थिक निरूपण है और आनन्दतत्व - परमानन्द धन परब्रह्म की प्राप्ति के सुनिश्चित मार्ग का यथातथ्य वर्णन है। यह अबोध बालक की अज्ञानावस्था से लेकर प्रबुद्ध पूर्ण ज्ञानी की अनन्त ज्ञानमयी स्थिति तक की रहस्यपूर्ण लम्बी कहानी है। मानवता के प्रारम्भ से लेकर मानवता की पूर्णता तक की गम्भीर गाथा है ; जीव की अल्पज्ञता लौर अल्पशक्तिमत्ता से लेकर सर्वशक्तिमान की सर्वज्ञता तक का विश्लेषणात्मक विवेचन है ; मूक स्तब्धता से लेकर पूर्णवानी परा तक के सम्पूर्ण स्वरूप का इतिवृत्त है। यह जीवन - चरित्र मुमुक्ष की आंतरिक व्यग्रता और घोर अशांति से लेकर जीवन्मुक्त की अथाह समुद्रवत् पूर्ण परम शान्ति तक का स्वरूप वर्णन है। वेद के कर्म उपासना और ज्ञान के त्रिकांड का विशिष्ट समन्वय इस जीवन चरित्र में उपलब्ध होता है। मानव जीवनोत्कर्षकारी कोई भी ऐसा महान सिद्धान्त दृष्टिगोचर नहीं होता जिसका इस जीवन - चरित्र में मूर्तिमान दर्शन प्राप्त न होता हो।

श्री शंकराचार्य उपदेशमाला के इस प्रथम पुष्प के प्राक्कथन में श्रीचरण के जीवन की कलकत्ता की एक ही घटना का उल्लेख हो सका है। प्रयत्न हमारा यही है कि यथाशीघ्र महाराज श्री की सम्पूर्ण जीवनी लिखी जाय परन्तु कार्य की गम्भीरता , महत्ता एवं विशालता को देखते हुये अनुभव होता है

कि इसमें कुछ समय लग जायगा। इस सम्बन्ध में सहृदय भक्तों और हमारे कुछ प्रिय जनों की उत्सुकता निवृत्ति के लिये यह निश्चय किया है कि इस उपदेशमाला के अग्रिम पुष्पों के साथ इसी प्रकार अंशतः श्रीचरण की झाँकी के उपलब्ध दृष्य उपस्थित करते जायँगे। जिससे सबको श्रीचरण की जीवनी और उपदेश दोनों साथ ही साथ उपलब्ध होते जायँ।

महाराज श्री के उपदेश उनके जीवन के अनुभूत प्रयोग हैं ; या यों कहें कि उनके जीवन चरित्र में अनुस्यूत सिद्धान्त ही उनके श्रीमुख से निःश्रृत उपदेश पुञ्ज हैं। जिन्हें उपदेश रूप में संकलन किया गया है वे तो प्रत्यक्ष ही उपदेश हैं किन्तु जिन सिद्धान्त - तत्वों की उपलब्धि इनकी झाँकी में होती है वह उनके द्वारा कार्यान्वित किये हुए सफल उपदेशों का सार संग्रह रूप ही है। श्रीचरण का जीवन चरित्र उपदेशमय है इसीलिये इसे भी इस उपदेशमाला में अनुस्यूत करते जाना ही उपयुक्त प्रतीत हुआ है।

' श्री शंकराचार्य उपदेश माला ' के प्रारम्भ का श्रेय जिन्हें , उन्हें हम इस समय बधाई दिये बिना नहीं रह सकते। मातृवत् स्नेह - भजनी भगिनीवत् स्नेह भाजिनी और बन्धुवत् स्नेह भाजन हमारे प्रियजन जिनका हृदय गुरुभक्ति से आप्लावित है , जिन्हें देख कर हमारे अन्तस्थ उद्गार बाहर छलक पड़ते है , जिन्हें पाकर हमारा प्रशान्त हृदयस्थभावसागर ज्वार बन कर तरङ्गित हो उठता है , जो समय - समय पर मिलकर गुरुभक्तिभाव से छलकते हुए अपने हृदयोद्गारों द्वारा हमारी भक्ति को तरङ्गत करके हमें आनन्द विभोर करते हैं , उन सौभाग्यशाली पवित्र महान आत्माओं के ही मधुर संकल्प से हमारी लेखनी में गति है। अतः इस उपदेशमाला लेखन का सारा श्रेय हमारे इन्हीं प्रियजनों को है। हमारा हृदय उत्सुक है कि इनके पवित्र नामों का उल्लेख कर दें किन्तु इनकी ऐसी इच्छा नही हो रही है। अपना नाम तक ये देना नहीं चाहते। पर हमसे चाहते हैं , यथाशीघ्र ही , ऐसे ही दिव्य अष्टोत्तरशत पुष्पों की सौरभयुक्त स्मरणीय ' माला '!! विचित्र है किन्तु सुखद है , धन्य है यह भक्त की प्रेमपूर्ण हठपूर्ण माँग !!!

जो ये चाहेंगे वही होगा - भक्तों का संकल्प भगवान पूरा करने वाले हैं। अपने सर्व समर्थ श्री गुरुदेवभगवान के राजिव चरणों में प्रार्थना है कि इन भक्तों के इस मंगलमय संकल्प की पूर्ति हो , और इनकी प्रेमपूर्ण माँग पूरी होने तक हमारी लेखनी जागृत रहे।

इस समय हम श्री पं। राजाराम गाडगिल प्रिंसिपल गवर्न्मेन्ट संस्कृत कालेज ग्वालियर का नामोल्लेख किये बिना नहीं रह सकते। उनकी गुरुपरायणता में हमें अपने भावों की प्रतिछवि का दर्शन होता

है। दो भिन्न हृदयों में एक दी ही , एक सी ही मूर्ति विराजी हो तो संभवता भौतिक नेत्र ही उन्हें पृथक मानेंगे। धन्य हैं वे , और धन्य हैं , गुरुकृपा से उनका हमारा सुखद समागम। इधर हमारे प्रेमी भगवद्भक्तों ने हमसे ' उपदेश माला ' की माँग की और उधर हमने उनसे भगवान के चरिता मृत के संस्कृत महाकाव्य की। आज इधर हम ' श्री शंकराचार्य उपदेश माला ' के प्रथम ' पुष्प ' का प्राक्कथन समाप्त कर रहें हैं , और उधर ग्वालियर में वे ' श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती चरित्र महाकाव्य ' का कोई सर्ग समाप्त कर रहे होंगे।

प्रताप भवन , मंसूरी

नाग पञ्चमी वि० सं० २००९

ब्रह्मचारी महेश

अमृत-कण

भगवान् का भक्त होकर कोई कभी दुखी नहीं रह सक्ता , यह हमारा अनुभव है।

* * *

ईश्वर प्राप्ति की वासना जब तक दृढ़ न होगी तब तक अनेकों वासनाओं के चक्कर में पतंग की भाँति न जाने कहाँ हाँ उढ़ते फिरोगे।

* * *

अनेक वासना - सूत्रों को इकट्ठा करके भगवद् - वासनारूपी मोटी रस्सी तैयार करो और उसी के सहारे भवकूप से बाहर निकल जाओ।

* * *

यदि कोई पाप कर्म हो जाय तो परमत्मा से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि - भगवान् ! हमारा इन्द्रियों पर अधिकार नहीं है क्षमा दिया जाय , भविष्य में फिर ऐसा नही होगा। परन्तु ऐसा नहीं कि

पाप भी करते जाओ और भगवान का भजन भी। भगवान की कृपा के बल पर पाप करने का विधान नहीं है।

* * *

पाप और पुण्य में शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र - दृष्टि से अपने अधिकार के अनुसार चेष्टा करना पुण्य और शास्त्र - दृष्टि से अनधिकार चेष्टा पाप है।

* * *

वेद शास्त्र का सहारा लेकर चलोगे तो पतन से बचे रहोगे।

* * *

लोग इसीलिये दुःखी हैं कि उनका कोई इष्ट नहीं। बिना इष्ट के सब लोग अनाथ हो रहे हैं।

* * *

(२)

शक्तिशाली बनना चाहते हो तो सर्वशक्तिमान भगवान की शरण में आओ।

* * *

कुसंग से सदा बचते रहो।

* * *

परमात्मा को अन्धा मत बनाओ। चारित्रवान् बनो और पाप करने से डरो।

* * *

यदि शान्ति चाहते हो तो व्यवहार में मन को अधिक मत फँसओ।

* * *

मन को संसार में कोई नहीं चाहता। तन और धन ही सब चाहते हैं।

* * *

वर्तमान में सुख मिले और भविष्य भी उज्ज्वल रहे , ऐसे ही कार्य करो।

अपने योग्य , शास्त्रानुसार कर्म ही ऐसे कार्य हैं।

* * *

शास्त्र - मर्यादाओं को लिये रहोगे तो लोक में ऐसे ही कार्य होगे जो परलोक को भी उज्ज्वल बनायेंगे।

* * *

भवसागर से पार होने के लिये मनुष्य शरीर रूपी सुन्दर नौका मिल गई है।

सतर्क रहो कहीं ऐसा न हो कि वासना की भँवर में पड़कर नौका डूब जाय।

* * *

(३)

धन - संग्रह से अधिक प्रयत्न बुद्धि शुद्ध करने के लिए करो।

* * *

भगवान दीन दयालु हैं , दुखी दयालु नहीं , दीन होकर उनकी शरण में आने से उनकी दयालुता काम करेगी।

* * *

दीन वह हैं जो सर्वथा निराधार हो गया हो , संसार में कही भी जिसको कोई भी आधार न रह गया हो , संसार सर्वथा जिसको निरस लगने लगा हो , किसी भी वस्तु में - जिसका मन न लगता हो - शब्द , स्पर्श रूप , रस , गन्ध आदि विषयों से जो सर्वथा उपराम हो गया हो और जिसकी वृत्ति के लिए कोई भी सांसारिक आधार न रह गया हो ऐसा निराधार जीव ही वास्तव में दीन कहा जा सकता है

* * *

जब पुत्र बीमार होता है तो वह पिता से - प्रार्थना करे , तभी पिता उसकी चिकित्सा कराये - ऐसी बात नहीं है। पिता स्वयं ही अपने पुत्र को रोगी नहीं देख सकता , बिना कहे ही वह रोग को हटाने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार जो भगवान को अपना कर उनके हो जाते हैं। जो एक बार भगवान कि कृपा खींच लेते हैं , उनके लिये भगवान बिना प्रार्थना किये ही सब कुछ करते रहते हैं।

यह अनुभूति सत्य है कि भगवान का भक्त कभी दुखी नही रह सकता।

* * *

फूटे घड़े से जैसे बुंद बुंद गिर कर जल कम होता जाता है वैसे ही क्षण - क्षण करके आयु समाप्त हो रही है। अभी से सावधान हो जाओ।

* * *

सावधानी यही है कि मन को संसार में मत फंसने दो। उस परमात्मा की ओर झुकाओ।

* * *

(४)

यदि एकान्त में न रह सको तो अच्छे लोगों के संग में रहो।

* * *

पेट के धर्म मत छोड़ो।

* * *

पेट तो चिता तक ही रहेगा परन्तु धर्म उससे भी आगे साथ जायेगा।

* * *

तुम तो स्वयं सच्चिदानन्दमय परमेश्वर के आंश हो परन्तु अपने को भूल कर अज्ञान के कारण इधर उधर लावारिस कुत्तों की तरह पूंछ हिलाते , विषयों में धक्का खाते फिरते हो।

-।-

१

मर्यादा की रक्षा से ही व्यवहार और परमार्थ दोनों उज्ज्वल रहते हैं।

* * *

मर्यादा की अवहेलना हुई और व्यवहार में मद्यापन आया तो परमार्थ भी बिगड़ जाता है।

* * *

वास्तव में मर्यादानुकूल व्यवहार हो पर्मार्थ का पथ है।

* * *

सत्संग की कमी से ही भगवान में प्रवृत्ति नहीं होती।

* * *

सत्संग में भगवान के स्वरूप का बोध होता है।

* * *

जितने दिन जीना है शान्ति से जियो। अधिक हाय - हाय करना व्यर्थ है : क्योंकि जो प्रारब्ध में है , उससे अधिक नहीं मिल सकता। और उतना तो मिलेगा ही।

सन्तोषपुर्वक जीवन बिताओ , अधिक परेशान होकर मारे - मारे मत फिरो।

* * *

साकार - निराकार के झगड़े में मत पड़ो , जो निराकार है , वही साकार होता है।

* * *

(६)

स्थिर प्रशान्त महासमुद्र ही तरड़्ग के रूप में ऊपर उठकर दिखलाई पड़ता है। जो निराकार है वही साकार होता है - तत्वतः दोनों में कोई अन्तर नहीं है। भगवान निराकार भी हैं और साकार भी। जिसकी जिसमें निष्ठा हो उसकी उपासना करके संसार समुद्र को पार कर जाओ।

* * *

वेष कल्याणकारी नहीं , निष्ठा से कल्याण होता है।

* * *

समय ही संसार में सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु है।

* * *

राष्ट्र के चरित्रबल की बुद्धि और हर प्रकार से राष्ट्र की उन्नति के लिए देश में धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है।

* * *

वस्तु में राग न रखो तो वियोग का अवसर ही न आयेगा।

* * *

देर अपनी ओर से है परमात्मा तो कल्याण करने के लिए तैयार ही है।

* * *

मन में नित्य अविनाशी आनन्दस्वरूप परमात्मा को स्थान दो।

* * *

मन में सदा भगवान का स्मरण करना रहे और मर्यादा का उल्लंघन न हो यही महात्मापन है।

* * *

(७)

सत्संग के द्वारा जब तक भगवान के स्वरूप , उनकी भक्तवत्सलता और सर्वशक्तिमत्ता का बोध नहीं होता तब तक उनमें इष्ट बुद्धि ठीक से नहीं होती।

इसलिए प्रयत्न करके समय निकालकर सत्संग करो।

* * *

परमात्मा को चाहते हो तो आस्तिक बनो।

* * *

वेदोक्त धर्माधर्म में विश्वास करना ही आस्तिकता है।

* * *

जब तक वेद - शास्त्र में विश्वास नहीं करोगे तब तक परमात्मा के स्वरूप का कुछ निश्चय नहीं हो सकता और स्वरूप का निश्चय हुये बिना विश्वास किस पर करोगे ?

* * *

जब तक विश्वास दृढ़ न होगा तब तक परमात्मा का यथार्थ - दर्शन सम्भव नहीं।

* * *

वेदोक्त धर्माधर्म में विश्वास करो।

* * *

धर्म करो और अधर्म को छोड़।

* * *

स्वधर्मानुष्ठान ही भगवान के निकट पहुँचने की सीढ़ी है।

* * *

(८)

स्वधर्मानुष्ठान करो और संसार से राग कम करते हुए परमात्मा में राग बढ़ाओ।

* * *

जिसको मनुष्य सुख का साधन मानता है उसी में इष्टबुद्धि होती है। धन , स्त्री पुत्रादि से सुख मिलेगा ऐसा निश्चय होने पर ही उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रयत्न करता है।

इसी प्रकार इष्टबुद्धि जब परमात्मा में हो जाती है तब परमात्मा की प्राप्ति के लिए भी मनुष्य अभ्यास करता है। परन्तु अभ्यास में दृढ़ता तभी आती है जब शास्त्र और गुरुओं से यह निश्चय हो जाता है कि परमात्मा की प्राप्ति में सुख होगा और शान्ति मिलेगी।

* * *

आगे की यात्रा के लिए अभी से कुछ तैयारी कर चलो।

* * *

काम , क्रोध , मद , लोभ और मोह यही अपने वास्तविक शत्रु हैं। अन्दर के यही शत्रु बाहर निकल कर व्यवहार में अनेकों शत्रु बना लेते हैं।

इन पर विजय प्राप्त करो यही वास्तविक विजय होगी।

* * *

अपने आन्तरिक शत्रुओं का यदि दमन कर लिया तो बाहर व्यवहार में कोई शत्रु उत्पन्न ही नहीं होगा।

* * *

जो राष्ट्र शत्रुओं से मुक्त होकर विश्व सदा सुख - शान्ति का अनुभव करना चाहता है। उसके लिए यह आवश्यक है कि उसके राष्ट्र निर्माता अथवा कर्णाधार अपने आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।

* * *

(९)

जिसने एक बार सतर्क होकर अच्छी तरह मनन करके विचारपूर्वक संसार की क्षणभंगुरता अपने हृदय में पुष्ट कर ली , वही आन्तरिक शत्रु वर्ग पर विजय प्राप्त करता है।

* * *

जिस मनुष्य को समस्त लौकिक प्रपञ्च की क्षणभंगुरता पुष्ट हो गई है उसे किसी वस्तु से लोभ और मोह नहीं हो सकता ; क्योंकि वह जानता है कि जिसका लोभ और मोह आज करेंगे कल उसका स्वयं ही नाश हो जाना है ; इसलिए व्यर्थ लोभ - मोह करके उसके परिणाम में पश्चाताप और अशान्ति ही हाथ लगेगी। इसलिए उसके अन्तःकरण में लोभ और मोह अंकुरित ही नही होते। उनका बीज ही नष्ट हो जाता है।

* * *

जैसे चारपाई का एक पाया खीचने से बाकी तीनों पाये अपने आप खिंच जाते है उसी प्रकार आन्तरिक शत्रुओं में से किसी भी एक का दमन कर देने से बाकी तभी शिथिल हो जाते हैं।

* * *

विचार पूर्वक संसार की क्षणभंगुरता पुष्ट करो , उसी से कामनायें संकुचित होंगी।

* * *

लौकिक वासनाओं को कम करते हुए भगवत् परायण वनो।

* * *

जगत् के व्यवहार में केवल कर्त्तव्य बुद्धि रहे उसमें इष्टबुद्धि मत करो।

* * *

संसार में ऐसे रहो जैसे कमल का पत्ता जल में रहता हुआ उससे अलग रहता है।

* * *

(१०)

आन्तरिक शत्रु निग्रह ही स्थायी रूप से वाह्म शत्रु - दमन का एक मात्र उपाय है।

* * *

जो वस्तु जैसी है वैसा ही देखना समदर्शिता है।

* * *

समदर्शी वही है जो मिथ्या संसार को मिथ्या समझता है। और सत्य परमात्मा को सत्य समझता है।

* * *

मिथ्या संसार में सत्य की भावना करने वाला , व्यवहार में इष्ट बुद्धि रखने वाला कभी भी समदर्शी नहीं हो सकता।

सर्वत्र आत्मदर्शी ही वास्तव में समदर्शी हो सकता है।

X X X

मोक्ष या परमांत्मा की प्राप्ति की लिये जो पुरुषार्थ किये जाते हैं उन्हें ही परमार्थ कहा जाता है।

X X X

समस्त संसार को अपना कुटुम्ब मानकर " आत्मवत्सर्वभूतेषु " की भावन से प्रभावित होकर ; यह समस्त जगत् परमात्मा का ही स्थूल शरीर है ; इस प्रकार समझकर ईर्ष्या , द्वेष आदि से रहित होकर भगवद्भाव में रहता हुआ सौभाग्वान पुरुष जो भी पुरुषार्थ करता हैं वह वह सब पर्मार्थ ही है।

X X X

अपने क्षुद लौकिक स्वार्थों में निमग्न रहोगे तो यह उन्नत अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती।

X X X

जिससे सुख प्राप्त हो वही अर्थ है। अपने को या दूसरों को क्षणिक लौकिक सुखों की प्राप्ति हो वह " स्वार्थ " और अपने को तथा दूसरों को नित्यानन्द स्वरूप स्थायी सुख रूप परमात्मा की प्राप्ति हो वह परम अर्थ (परमार्थ) कहा जाता है।

X X X

(११)

इष्ट ही अनिष्टों से बचाता है।

X X X

इसी से लोग दुःखी हैं कि उनका कोई इष्ट नहीं।

X X X

समय का सदुपयोग करो।

X X X

संसार सागर से पार होने के लिए मनुष्य शरीर रूपी सुन्दर नौका मिलीं है। यह नौका सदा अपने अधिकार में रहनेवाली नहीं है।

जब तक यह अपने अधिकार में है तब तक ऐसा प्रयत्न करो कि इसके सहारे भवसागर से पार हो जाओ।

जब तक यह अपने अधिकार है इसका सदुपयोग करो।

यदि समय रहते इसका सदुपयोग न किया तो जब इसे छोड़ने का परवाना आयेगा तो निराधार होकर चारों तरफ रोते फिरोगे। उस समय कोई सहायक न होगा , और यह भी निश्चय हैं कि उस समय एक मिनट की भी मोहलत नहीं मिलेगी ; नौका हाथ से छुट जायगी और फिर न जाने कब तक संसार सागर में निराधार होकर डूबते उतराते , जन्म - मरण की घोरातिघोर यातनायें सहनी पड़ें।

२

धन से तुम्हारा अभ्युदय और कल्याण सम्भव नहीं ; इसलिये लक्ष्मीपति भगवान को अपनाओ और लक्ष्मी की चिंता छोड़ दो।

X X X

भौतिकवाद का जितना विकास होता जायगा , संसार , सुख - शांति से उतना ही दूर होता जायगा।

X X X

विश्व में शान्ति स्थापनार्थ भौतिकवाद का खण्डन बहुत ही आवश्यक है।

X X X

स्वतंत्र बुद्धिवाद से नहीं शास्त्रवाद से कल्याण होगा।

+ + +

आज अध्यात्मवाद का अतिक्रमण करके भौतिकवाद प्रबल हो रहा है और बुद्धिवाद के आगे शास्त्रवाद गौड़ हो रहा है।

+ + +

भौतिकवाद में सुख की बिडम्बना मात्र है इसी लिये भारत में भौतिकवाद को कभी भी सुख शांति का आधार नहीं माना गया। यहाँ सदैव अध्यात्मवाद की ही प्रधानता नही है।

+ + +

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही अपार आनन्द का अनादि श्रोत है।

+ + +

(१३)

काष्ठ में अग्नि सर्वत्र व्याप्त है किंतु इस परोक्षज्ञान से कोई काम नहीं चल सकता। धर्षण द्वारा अग्नि को प्रकट कर लेने पर ही उससे कुछ काम लिया जा सकता है।

+ + +

परमात्मा सर्वत्र चराचर में व्याप्त है केवल इस परोक्षज्ञान से दुख की सर्वथा निवृत्ति नहीं हो सकती।

+ + +

उपासना द्वारा परमात्मा को प्रत्यक्ष प्रगट करके उसका अपरोक्ष ज्ञान कर लेने से ही समस्त दुखों की निवृत्ति और अतिशय आनन्द की प्राप्ति सम्भव है।

+ + +

केवल बीजक के अध्ययन से कोई धनी नहीं बन सकता। जब तक बीजक के अनुसार खनन करके धन प्राप्त न कर लिया जाय।

+ + +

वेद और शास्त्र परमात्मा की प्राप्ति के लिये बीजक के समान हैं। वेद शास्त्रों की आज्ञानुसार जप ध्यान आदि के द्वारा परमात्मा को प्रत्यक्ष करना ही निधि का खनन करना है।

+ + +

ज्ञान विज्ञान के समन्वय से ही सुख शान्ति की प्राप्ति होगी।

+ + +

धर्मानुकूल आचरण नास्तिको के लिये भी सुख एवं शान्ति क देने वाला है।

+ + +

प्रत्येक ब्यक्ति का आचरण होना आवश्यक है जिससे पारस्परिक प्रेम की वृद्धि होकर समाज में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना हो सके।

+ + +

धर्म के दस लक्षण ऐसे हैं हो संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिये लाभ - दायक हैं चाहे वह किसी भी देश या समाज का हो। येतो नास्तिकों के लिये भी सुख एवं शान्तिप्रद हैं।

+ + +

जो देश भौतिकवाद में बहुत आगे बढ़े हुये उनमें कलह और अशांति के नित्य नये निमित्त उपस्थित होते रहते हैं।

+ + +

दूसरों से जो सुख शान्ति की प्रतीति होती है वह तो सुख का आभास मात्र है। उसका केवल इतना ही प्रयोजन है कि हम जान लें कि सुख का अस्तित्व हैं।

+ + +

जब सुख की छाया के सान्निध्य से इतने आनन्द का अनुभव होता है तो अनन्तानन्दमय परमानन्द आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के आनन्द का तो अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता।

+ + +

संसार में वस्तुओं की प्राप्ति से हमें सुख का जो अनुभव होता है , वह क्षणिक ही होता है परन्तु उसके वियोग में होनेवाला दुःख अधिक समय तक होता है।

+ + +

संयोग में क्षणिक सुख और वियोग में चिर दुख के सिवाय भौतिकवाद में और रक्खा ही क्या है।

+ + +

इसीलिये दुनिया के सारे देशों को भौतिकवाद के पीछे पागल बने हुये दौड़ते देखकर भी भारतीय उनसे प्रभावित न होकर वास्तविक सुख - शांति - प्रद अध्यात्मवाद का ही आश्रयण करते हैं।

+ + +

(१५)

ग्राह ने जब गज को पकड़ा उस समय गज सर्वथा निराधार हो गया , उसे कहीं कोई सहायक नहीं दिखा। संसार की आशा छोड़कर , सर्वथा दीन होकर उसने भगवान् को पुकारा उसी समय दीनदयालु भगवान ने अपनी दयालुता का परिचय दिया।

+ + +

द्रौपदी चीर - हरण के समय दीन हो गई थी। कोई भी उसका रक्षक नहीं रह गया था , उस निस्सहाय दीनावस्था में उसने भगवान को पुकारा - दीनदयालु भगवान ने उस पर दया की।

+ + +

जब तक संसार की आशा नहीं छूटेगी तब तक दीनावस्था नहीं आवेगी और दीन हुए बिना दीनदयालु भगवान की दयालुता के पात्र नहीं बन सकते।

दीनावस्था में प्राणी को केवल एकमात्र परमात्मा का ही आधार रह जाता है।

+ + +

दीन , परमात्मा के प्रति अनन्य होता है। और अपने अनन्य भक्तों के लिये भगवान् को भी अनन्य होना पड़ता है क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(श्री गीता)

भगवान् कहते हैं कि जो जिस प्रकार मुझे भजता है मैं भी उसी प्रकार से उसे भजता हुँ।

+ + +

वास्तव में संसारी मनुष्य यदि कुछ देर भगवान् का भजन करे तो कोई वडी बात नहीं क्योंकि कर समय वह किसी न किसी को तो भजता ही रहता है - स्त्री , धन , पुत्र , मित्र , शत्रु आदि सभी का वह स्मरण करता है , स्मरण करना ही भजन है।

+ + +

परमात्मा को अन्धा मत बनाओ। वह अन्तर्यामी है , सब के सब कर्मो को जानता है। उनकी दृष्ट बचाकर कोई कार्य नहीं किय जा सकता।

+ + +

ऐसा मत सोचो कि हमारे इस कार्य को कोई नहीं जानता। जिसके हाथ में सत्कर्म , दुष्कर्म , का लेख है वह तुम्हारे भीतर बाहर की हर बात जानता है।

+ + +

जो ठीक मार्ग लेकर भगवान् का भजन करने लगेगा वह दुराचारी रह ही नहीं सकता।

+ + +

अपने इष्ट को व्यापक - सर्वत्र देखो यही अनन्यता है।

+ + +

विष्णु , शंकर , देवी , सूर्य गणेश में कोई बड़ा छोटा नहीं है। यह सभी अपने उपासक का पूर्णरूप से कल्याण करने में समर्थ हैं।

+ + +

जैसे जैसे भगवान की उपासना करोगे वैसे वैसे शान्ति संतोष का अनुभव होगा।

+ + +

अपने अधिकारानुसार सद्गुरु से प्राप्त मन्त्र का जप करने से पाप नष्ट होते हैं।

+ + +

यदि मन को वश में करना है तो उपयुक्त ध्यान का प्रकार समझकर नित्य - थोड़ा थोड़ा अभ्यास करो।

कागज की नीव पर बैठकर समुद्र पार नहीं किया जा सकता। संसारि वस्तुओं से प्रेम करना कागज की नीव पर बैठना है। वह स्वयं गल जायगी और बैठने वाले को डुबो देगी।

+ + +

यदि अच्छा बनना चाहते हो तो अच्छे लोगों का साथ करो।

+ + +

यदि बुरा नहीं बनना चाहते तो बुरे लोगों के सम्पर्क से बचो।

३

जो काम करो विचार कर करो।

विश्वामित्र अपने तपोबल से चाहते तो साक्षात् भगवान् में लीन हो जाते , परन्तु उन्होंने केवल ब्राह्मण कहलाने के लिये तप किया -

लोक वासना में फँसकर मनुष्य अपना बहुत समय व्यर्थ खो बैठता हैं ; अन्त में यही हाता है कि ' खोदा पहाड़ निकली चुहिया '

+ + +

विद्वानों को चाहिये कि जिस परमात्मा को उन्होंने वेद शास्त्र से पढ़कर जाना है उसको प्राप्त करने के लिये विधिवत उपासना करें।

+ + +

अविश्वास करने की आदत मत डालो। हीरा भी मिल जाय और अविश्वास करके कांच मान लो तो उसका मिलना भी व्यर्थ ही , जायगा। परन्तु ऐसा भी विश्वास मत करो कि बालू में चीनी की भावना हो जाय

+ + +

मन को संसार में लागाओ ; पर इतना ही जिससे परमार्थ न बिगड़े।

+ + +

अन्न - वस्त्र का प्रबन्ध करना आवश्यक है किन्तु अन्न - वस्त्र की अधिकता से विश्व में सुख - शान्ति की स्थापना हो जायगी , यह आशा करना भूल है।

X + +

अन्न - वस्त्र का स्थूल शरीर से सम्बन्ध है और अपनी सूक्ष्म शरीर में होती है। इसलिये अन्न - वस्त्र का ढेर लगा देने से या भौतिक सामग्री की अधिकाधिक प्रचुरता होने से ही विश्व में शान्ति नहीं हो सकती।

यदि किसी को प्राण दंड को आज्ञा हो जाय तो उसके मन में घोर अशांति और चिन्ता हो जायगी।

क्या उसके शरीर का श्रृङ्गार करने और शब्द , स्पर्श , रूप ' रस ' गंध आदि इन्द्रिय उपभोग की भौतिक सामग्री से उसकी अशांति हटाई जा सकती है ?

निश्चय है कि अशान्ति का स्थान सूक्ष्म शरीर है। और जब तक सूक्ष्म शरीर का उपचार , नहीं किया जायगा तब तक अशान्ति मिट नहीं सकती।

+ + +

सेंसार की कोई वस्तु साथ नहीं जायगी इसलिये यहाँ की किसी वस्तु के लिये परेशान मत रहो।

+ + +

अपने किये हुए कर्म ही साथ जाते हैं :-

"कर्मानुगो गच्छति जीव एकः"

इसलिये पुण्य कर्म ही करो जिससे आगे की यात्रा अच्छी हो।

+ + +

धर्म कर्म और परमात्मा से विमुख होने से ही विपत्ति आई है और उसी के अपनाने से जायगी।

+ + +

जितना दूसरों के दोषों के जानने की चेष्टा करते हो उससे आधी भी चेष्टा यदि अपने दुर्गुणों को जानने को करो तो मनुष्य से देवता बन जाओ।

X X X

धर्माचार्यों का आदेश थोड़ा - थोड़ा भी मानते चलो तो कल्याण हो जाय।

X X X

यदि कोई अपमान करे तो यही विचार करो कि यह मलमूत्र का शरीर अपमान ही करने योग्य है , इसी का अपमान किया जा रहा है - यथायोग्य ही काम हो रहा है - कोई अप्रसन्नता की बात नही।

+ + +

जो धर्म कर्म कर लोगे वही आगे साथ देगा।

* * *

अपने मन में दृढ़ता तो रखो परन्तु मन का पूरा विश्वास मत करो।

अनर्थकारी प्रसङ्गों को बचाओ , जिससे मन को गड़बड़ाने का अवसर ही न मिले।

* * *

जिन्होंने अपनी मन रूपी बालू में परमात्मा रूपी सीमेंट का योग दे दिया है , उनका मन इतना दृढ़ हो गया है कि फिर विषयों के प्रबल प्रलोभन रूपी भूकम्प भी उसे नहीं डिगा सकते।

* * *

मन तो बिल्कुल बालू की दिवाल है , जरा बून्द पानी पड़ा कि खिसकी।

इसमें उपासना रूपी सीमेंट का थोड़ा योग दे दिया जाय तो यह बहुत मजबूत हो जाती है

* * *

भगवान के नाम में बहुत शक्ति है पर यदि शक्ति का उद्घाटन हो जाय तभी वह काम आयेगीं।

अग्नि में सर्वस्य भष्म कर देने को शक्ति है ; पर यदि अग्नि कमजोर है तो घृत के छींटे से भी बुझ जाती है।

* * *

भगवान का नाम अति शक्तिशाली और काम धुक है , पर उसी के लिये है जिसने उसकी शक्ति का उद्घाटन कर लिया है।

* * *

(२१)

बीज में वृक्ष की शक्ति अवश्य रहती है पर एक गज करोड़ों बीजों का भार उठा लेता है ; किन्तु यदि एक बीज सुक्षेत्र में वपन कर दिया जाय और उसे प्रारम्भ में ऊपरी बाधाओं से बचाया जाय तो बढ़ कर वह महान् हो जाता है और उसी में अनेको गज बांधे जा सकते हैं।

* * *

भगवन्नाम रूपी बीज सुक्षेत्र में ही जमकर पल्लवित पुष्पित और फलित होता है। ऊसर में डाल दिया जाय तो नष्ट हो जाता है।

* * *

अपने अन्तःकरण को सुक्षेत्र बनाना चाहिए। अपने अधिकारानुसार वर्णाश्रमोचित कर्म करने से अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवान् को पाने का अधिकारी बनता है।

* * *

जिनको विरक्त जीवन व्यतीत करना है उनको जड़ माया और चैतन्य माया दोनों से दूर रहना चाहिये।

* * *

जड़ माया है धन , पैसा , रुपया , मान , प्रतिष्ठा आदि और चैतन्य माया है स्त्री।

* * *

माया जहां है , जैसी है बनी रहे। न हमें उसकी निन्दा करना है न प्रशंसा ; केवल अपने को उससे अलग रखना है।

* * *

यदि असंग नहीं रहोगे तो पतन की शङ्का पग - पग पर है।

* * *

जड़ और चैतन्य माया से अलग रहने के नियम का विरक्तों को कड़ाई से पालन करना चाहिये।

* * *

(२२)

देवियों को चाहिये कि कभी किसी साधू के पास अकेली न जायँ। कथा - वार्ता , सत्संग में जाना हो तो अपने पति , पुत्र या किसी अभिभावक के साथ ही जायँ। यही मर्यादा है।

* * *

जिसको जो रुचे वह धर्म नहीं है। जो शास्त्र आज्ञा दे वही धर्म है।

* * *

अपना धर्म पालन करते हुए मर जाना भी कल्याणकारी है दूसरे के धर्म को अपनाने से पतन होता है।

* * *

सन्यासी को रुपया पैसा , ब्रह्मचारी को पान तुम्बाखू और चोर को अभयदान देने से दाता को भी नरक होता है।

* * *

स्वधर्म और परधर्म दोनों को जानों। स्वधर्म जान कर उसका पालन करो और परधर्म जानकर उससे बचो।

* * *

अपने धर्म के सम्बन्ध में समझना हो तो विद्वानों या महात्माओं से समझो जो वेद शास्त्र को मानते हो और उसके अनुसार चलते हों। जो स्वयं वेद - शास्त्र नहीं मानते उनसे अपना मार्ग पूछोगे तो वे यही चाहेंगे कि :-

- होउ पड़ोसी मोरी नाई -

* * *

द्विजातियों को स्नान , संन्या , जप , होम , अर्चन पूजन और बलि वैश्वदेव नित्य करना चाहिये।

* * *

शंकर , विष्णु (राम , कृष्ण) सुर्य गणेश और देवी इन पाँच देवताओं में से जो सबसे अधिक प्रिय हों , उनके मन्त्र का जप नित्य करना चाहिये।

* * *

(२३)

जप करने से पाप नष्ट होते हैं।

'जपतो नास्ति पातकम्'

* * *

अपने इष्ट का मन्त्र और उनके ध्यान का प्रकार किसी अनुभवी सद्गुरु से समझ कर नित्य कुछ न कुछ समय इष्ट मंत्र के जप और ध्यान में अवश्य लगाओ।

* * *

जप करने से सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं।

'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्नसंशयः'

* * *

संसार छोड़ कर जीव जब जाता है तो उसके साथ केवल उसका किया हुआ धर्म कर्म ही जाता है। इसलिए धर्म - कर्म करके आगे के लिये अच्छा साथी बनाओ।

* * *

उपेक्षा बहुत बड़ा अस्त्र है। कोई कटुवचन कहे या किसी रूप में अपमान करे तो उसकी उपेक्षा कर दो अर्थात् उसकी ओर से अपना ध्यान हटा लो।

* * *

जब कोई किसी का अपमान करता है तो इसलिए करता है कि उसे कष्ट हो। यदि उसकी उपेक्षा कर दी गई और उस ओर ध्यान ही न दिया गया , तो उसका मनोराज्य विफल हो जाता है। यही उसकी हार है।

(२४)

अन्याय से धन संग्रह करने का विचार मत करो।

* * *

मन से कभी किसी का अनिष्ट चिन्तन मत करो।

* * *

सावधान रहो कि शरीर से यथासाध्य कोई पाप न हो जाय।

* * *

कभी किसी को कटुवचन मत कहो।

* * *

४

जैसा संग होता है वैसे ही गुण - दोष आते हैं।

यदि संसर्ग अच्छा न रहा तो वृत्ति का नीचे गिर जाना असम्भव नहीं।

* * *

यदि सर्पं को मारने के लिए बिल पर लाठी पीटी जाय तो क्या सर्प मरेगा ?

सुक्ष्म शरीर के रोग (अशान्ति) दूर करने के लिए स्थूल शरीर सम्बन्धी उपचार किये जायँ तो क्या शान्ति मिलेगी ?

* * *

उसी मार्ग को अपनाओ जिससे लोक - परलोक दोनों बने।

* * *

विश्व की अशान्ति अन्न - वस्त्र का ढेर लगाने से दूर नहीं होगी।

* * *

जब तक परमानन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी तब तक दुख की निवृत्ति नहीं हो सकती।

* * *

कोई किसी से प्रेम करता है तो अपने लिये करता है उसके लिये नहीं।

* * *

जैसे मार्गं में कंटक से बचते हो वैसे ही संसार में शब्द स्पर्शं रूप रस गंध आदि विषयों से बचो।

* * *

ऊपर से मर्यादा पूर्वक जगत् का काम करते रहो और भीतर से भगवान् का नाम लेते रहो।

(२६)

जहाँ रहो वहीं , जो कार्य करते हो , उसको करते हुये ही भगवान का भजन करते रहो।

* * *

वास्तविक राग परमात्मा में करो और बनावटी राग संसार में। तभी अपना जीवन सफल बना सकोगे नहीं तो अन्त में पछताना पड़ेगा।

* * *

विषय लोलुपता छोड़ो और परमात्मा में मन लगाओ।

* * *

परमात्मा में मन लगाओगे तो शांति और संतोष का अनुभव होगा एवं सब प्रकार की उन्नति होगी।

* * *

जब तक व्यक्तिगत रूप से लोगों के सुक्ष्म शरीर मन - का उपचार करके मन की मलिनता दूर न की जायेगी तब तक व्यक्तिगत अशान्ति की निवृत्ति संभव नहीं , और जब तक व्यक्तिगत अशान्ति नहीं जायगी तब तक विश्व - शांति की बातें केवल बातें ही हैं।

+ + +

अविधिपूर्वक प्राणायाम करने से या पथ्य का उचित पालन न कर सकने के कारण प्राणायाम से अनेकों प्रकार के रोग हो जाते हैं। विचार - पूर्वक ही प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए।

+ + +

लोक - परलोक में सारी उन्नति मन के ऊपर ही रहती है। यदि मन पवित्र है तो सर्वत्र उन्नति होगी और यदि मन अशुद्ध है तो विवेकहीन होकर मनुष्य सदा पतन की ओर ही बड़ेगा।

+ + +

शुद्ध मन परमात्मा से अनुराग करता है। परमात्मा का अनुराग बढ़ने से विषय - वासनाओं से अरुचि हो जाती है , और विवेक का उदय होता है। जिसके कारण मनुष्य शुभ संकल्पवान होकर सर्वत्र उन्नति करता है।

+ + +

अशुद्ध मन विषयों की ओर दौड़ता है। विषयानुराग का फल दुख और पतन होता है।

+ + +

शुद्ध मन में अविहिताचरण (धर्म - विरुद्ध आचरण) की भावनायें नहीं उठतीं और अनाचार , दुराचार , पापाचार , भ्रष्टाचार आदि पतनकारी प्रवृत्तियों के अभाव में सदाचार , सद्विचार , सत्यनिष्ठा , क्षमा दया आदि दैवी प्रकृति के लक्षण की प्रधानता हो के कारण मनुष्यलोक में सदा सुख शान्ति का अनुभव करता है।

+ + +

जो शास्त्रानुकूल पुरुषार्थ है वही पुण्य है और वही अभ्युदय अर्थात् लौकिक उन्नति और मोक्ष का देनेवाला है।

+ + +

शास्त्रों के विरुद्ध पुरुषार्थ मत करो , पाप से बचो और पुण्य करो यही उन्नति का प्रकार है।

+ + +

संसार इतना स्वार्थी है कि यदि मनुष्य का चमड़ा भी काम में आता होता तो चमड़ी खिंचवाकर चिता पर भेजता।

+ + +

इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि जब तक लोगों का स्वार्थ सिद्ध होता है तभी तक सब मान सम्मान और अनुराग दिखाते हैं।

५

व्यवहार के सहारे ही परमार्थ का मार्ग चलता है इसलिए व्यवहार को भद्दा मत होने दो। सबके साथ मर्यादापूर्ण व्यवहार रखो।

* * *

प्रारब्ध सबको भोगना पड़ता है ज्ञानी को भी भोगना पड़ता है। इसलिए सम्पत्ति विपत्ति जब जो सामने आये अपनी ही चीज समझ कर धैर्यपूर्वक भोगना चाहिये।

* * *

मनुष्य जीवन की सफलता भगवान की प्राप्ति में है , किसी लौकिक कार्य के पूरा होने में नहीं।

* * *

संचित कर्मों को ज्ञानाग्नि से दग्ध करो , प्रारब्ध को धैर्यपूर्वक भोग कर समाप्त करो , और क्रियमाण कर्मों को भगवान को अर्पण कर दो , इस तरह कर्म करते हुए कर्मबन्धन से मुक्त हो जाओगे।

* * *

भगवान का भजन हो जीवन में मुख्य है। और भगवत भजन में सुविधा रहे इसी के लिए स्वधर्म - पालन का उपदेश है।

* * *

अपने जीवन को धर्म के नियन्त्रण में रक्खो।

* * *

स्वधर्म पालन की स्वतन्त्रता तो कल्याणकारी है परन्तु परधर्मावलम्बन की स्वतन्त्रता से पतन ही होता है।

* * *

(२९)

एकान्त स्थान में अपनी माता , पुत्री और बहिन के साथ भी न बैठो - क्योंकि इंद्रियों का वेग प्रबल होता है , बुद्धिमानों को भी विचलित कर देता है।

* * *

यदि धर्म का खण्डन करना है तो खण्डन करने के पहले समझ तो लो वह क्या वस्तु है। बिना समझे किसी का खण्डन करना मूर्खता ही नहीं असभ्यता भी है।

* * *

देश , काल , वय , परिस्थिति , बुद्धि और शक्ति का निदान करके गुरु शिष्य को उपदेश करता है तभी उससे लाभ होता है।

* * *

प्रातःकाल उठकर सबसे पहले पृथ्वी को प्रणाम करो , फिर माता को प्रणाम करो , फिर पिता को प्रणाम करो , फिर गुरु या आचार्य को प्रणाम करो , इनमें से जो निकट न हों उनके चित्र को प्रणाम करो , और यदि चित्र भी नहीं है तो उनका स्मरण करके मानसिक प्रणाम करो।

+ + +

जो भक्ति करता हुआ भगवान से कुछ मांगता नहीं उस पर भगवान जल्दी प्रसन्न होते हैं।

+ + +

विषय भोग की इच्छा है तो शास्त्र - मर्यादानुसार विषयों को भोगो।

+ + +

सच्चे जिज्ञासु को संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसे किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रहती। वह अपने इष्ट की प्राप्ति के प्रयत्नों में लगा रहता है।

+ + +

अपने - अपने धर्म से विमुख होने के कारण ही लोग आजकल दुखी और अशान्त हैं। सब लोग अपने - अपने धर्म का पालन करने लगें तो अभी सुख - शान्ति का अनुभव होने लगे।

+ + +

पेट के लिए धर्म मत छोड़ो।

+ + +

जनता को चाहिये कि सरकार की बातें माने परन्तु धर्म विरुद्ध बातें न माने।

+ + +

असत्य भाषण से यज्ञ का फल , घमण्ड करने से तप का फल , ब्राह्मण की निन्दा करने से आयु और दान करके कह देने से दान का फल नष्ट हो जाता है।

+ + +

कैसे जानें कि हमारा मन शुद्ध हो गया ?

जब मन में कोई विकार न उत्पन्न हो तो समझना चाहिये कि हमारा मन शुद्ध हो गया। जब किसी की निन्दा और विरोध करने की इच्छा न रह जाय तो समझना चाहिये कि मन पवित्र हो गया।

+ + +

भगवान का भजन करते हो तो झूठ , चोरी , दगाबाजी , परनिन्दा , चालाकीं आदि से बचो नहीं तो गज स्नान हो जायेगा। हाथी स्नान करके अपने शरीर को साफ तो करता है परन्तु फिर अपने ऊपर धूली डाल लेता है।

+ + +

औषधि का सेवन करो तो कुपथ्य से बचौ तभी पूरा लाभ होगा। सत्संग करो तो कुसंग से भी बचो। भगवान का भजन - पूजन करते हो तो जिसको तुम बुरा समझो उससे दूर रहो।

६

जैसा सौदा हो वैसा ही दाम चुकाओ। क्षणभंगुर सांसारिक व्यवहार में क्षणभंगुर तन और धन को लगाओ। मन तो सदा साथ रहने वाली स्थायी वस्तु है परलोक में भी साथ ही रहेगा। इसलिए इसके साथ स्थायी वस्तु का सम्बन्ध जोड़ो।

परम स्थायी चराचर में रमा हुआ , परमात्मा ही है ; उसके साथ मन का सम्बन्ध जोड़ो।

X X X

यदि मन को धन से सन्तोष हो जाय या पुत्र अथवा स्त्री से सन्तोष हो जाय तो वह फिर दूसरी जगह क्यों जायगा ? किन्तु मन कभी भी एक पदार्थ में नहीं टिकता। इससे स्पष्ट है कि मन को कोई भी सांसारिक पदार्थ अच्छे नहीं लगते। किसी पदार्थ को मन अच्छा मानकर उसके निकट जाता है परन्तु थोड़ी देर में हट जाता है।

- - -

संसार में मन को कोई को नहीं चाहता और मन भी किसी संसारी वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होता।

न मन संसार के योग्य है न संसार ही मन के योग्य है।

- - -

मन जब परमात्मा को पा जाता है तो वही स्थिर हो जाता है फिर कहीं किसी दूसरी वस्तु की इच्छा नहीं करता। इसी से मालूम होता है कि मन के योग्य परमात्मा ही है और कुछ नहीं।

(३२)

स्मरण रखो कि जिस मन को संसार में कोई नहीं चाहता वही मन परमात्मा के निकट पहुँचाने में काम आता है।

इसलिए संसार की बाजार में तन और धन से व्यापार करो और मन को परमात्मा की ओर लगाओ तो संसार का व्यवहार भी चलता जायगा और परमार्थ का मार्ग भी साफ होता जायगा।

X X X

भली प्रकार छानबीन करने के उपरान्त एक बार सद्गुरु प्राप्त हो जाय तो फिर उसके वाक्यों को मूल - मन्त्र मानकर चलने की आवश्यकता है। फिर तो कल्याण हो ही जायगा।

X X X

अस्थिर चित्त , छिछली श्रद्धा और पौरुषहीनता से परमार्थ तो क्या स्वार्थ सिद्धि भी नहीं हो सकती।

X X X

यदि सारा संसार भी साधक की श्रद्धा को बिगाड़ना चाहे तो भी उससे विचलित न होते हुए असीम दृढ़ता , धैर्य और लगन के साथ साधनारूढ़ रहना चाहिए।

X X X

गुरु के बताये हुए मार्ग में जितनी दृढ़ श्रद्धा होगी उतनी ही तीव्रता के साथ चित्तवृत्तियाँ साधन में एकाग्र होंगी।

X X X

सर्वकल्याणकारी धर्म और सर्वशक्तिमान् भगवान की अवहेलना करके कौन सुख - शान्ति का अनुभव कर सकता है ?

X X X

हमने अपने जीवन के धर्मिक पहलू को छोड़ दिया है इसी से अशांति , असन्तोष और अनेकों दुःखों को भोग रहे हैं।

X X X

(३३)

इष्ट मित्र कुटुम्बी आदि सब अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं , आपके मन को कोई नहीं चाहता।

तन और धन से इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहो , मन से परमात्मा का चिन्तन करो।

X X X

इष्ट मित्र कुटुम्बीजन जो तुमसे व्यवहार में सहायता चाहते हैं उनको कुछ सहयोग न देकर केवल यह कहो कि मन से हम आपको बहुत चाहते हैं ; तो वे यही कहेंगे कि ' अपना मन आप अपने पास रखिये हमारी तो आवश्यकताओं को पूरा कीजिए।'

संसार में कोई भी तुम्हारा मन नहीं चाहता। यहाँ सभी तुम्हारे तन और धन के ही ग्राहक हैं। मन तो तुम जबरदस्ती दूसरों के गलें लगाते हो।

जिसकी जहाँ जरूरत है उसको वहीं लगाना बुद्धिमानी है , योग्यता - नुसार वस्तु का उपभोग न हुआ तो व्यवहार कुशलता नहीं कही जा सकती।

+ + +

जो संसार यहीं छूट जाने वाला है उसमें यहीं छूट जाने वाले तन और धन को लगाना चाहिये।

+ + +

मन जब तक शंकाशील रहता है तब तक उसकी शक्ति बिखरी रहती है और साधन अच्छी तरह चल नहीं पाता।

+ + +

जब तक मनुष्य पाप करने से नहीं डरेगा और पुण्य कर्म में उसकी प्रबृत्ति नहीं होगी तब तक सुख - शान्ति का यथार्थ अनुभव नहीं होगा।

+ + +

जब तक मनुष्य पाप पुण्य को पहिचानेगा नहीं तब तक समाज में भ्रष्टाचार , दुराचार , पापाचार बन्द नहीं होंगे , शासन सत्ता की ओर से इसके लिये चाहे जितने निरोधक विभाग खोल दिये जायें।

* * *

जेल और पुलिस आदि विभागों में सरकार करोड़ों रुपया खर्च कर रही है परन्तु जेलों का काम ही न पड़े ऐसा काम नहीं किया जा रहा है।

* * *

जब तक छोटी उमर में ही बालकों को पाप पुण्य का स्वरूप नहीं समझाया जायगा और उसके फल का बोध नहीं कराया जायगा - कि पुण्य से सुख और पाप से दुःख होता है - तब तक समाज में दुराचार बन्द नहीं हो सकता।

* * *

धर्मिक शिक्षा के द्वारा ही बालकों को पाप पुण्य का बोध हो सकता है।

* * *

यह अधार्मिक शिक्षा का ही फल है कि पापाचार भ्रष्टाचार करने में लोगों को तनिक भी हिचक नहीं होती।

* * *

मन का प्रधान कार्य परमात्मा का चिन्तन रक्खो और अप्रधान कार्य व्यवहार रक्खो तो दोनों हाथ लड्डू रहेंगे।

* * *

व्यवहार चलाने के लिये पूरा मन फँसाने की आवश्यकता नहीं।

* * *

मन के थोड़े सहयोग से ही व्यवहार चल सकता है।

* * *

(३५)

जिस प्रकार कृपण (कंजूस) मनुष्य सभी व्यवहारिक कार्य करते हुये भी मन के द्वारा प्रधान रूप से धन का चिन्तन करता रहता है उसी प्रकार मन के द्वारा प्रधान रूप से भगवान का चिन्तन करते हुए , व्याव - हारिक कार्य करते रहो।

* * *

जीव जन्म - जन्मान्तरों से कर्म करता चला आ रहा , कर्म करने का इसका अभ्यास बहुत पुराना है , इसलिये मन का थोड़ा सहयोग देकर कार्य प्रारम्भ कर देने से उसी प्रकार कार्य होते रहते हैं जिस प्रकार इंजन किसी डिब्बे को धक्का देकर ढकेल देता है तो फिर डिब्बा बहुत दूर तक ढकिलता चला जाता है।

* * *

आवश्यकता इस बात की है कि मन के प्रयोग में प्रधान अप्रधान का विभाग कर लिया जाय , मन के लिये प्रधान कार्य परमात्मा का चिन्तन माना जाय और अप्रधान रूप से मन का व्यवहार में भी थोड़ा सहयोग देकर कार्य किया जाय।

* * *

व्यवहार संचालन में प्रधान रूप से तन और धन तथा अप्रधान रूप से मन को लगाओ।

* * *

मन जब प्रधान रूप से परमात्मा में लग जाता है तब परमात्मा को कृपा प्राप्त होती है। परमात्मा सर्वशक्तिमान है उसकी थोड़ी भी कृपा जीव का पूर्ण रूप से कल्याण कर सकती है।

* * *

वेद शास्त्र तो भगवान की इस प्रतिज्ञा को प्रमाणित करता ही है कि ' जो अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करता है उसका आवश्यक व्यवहार भी मैं संचालन करता हूँ ' परन्तु भक्तों दे अनुभव भी भगवान की इस प्रतिज्ञा को प्रमाणित करते हैं।

* * *

(३६)

अपने मन की दरिद्रता हटाओ।

पत्ते खाकर रहो परन्तु पेट के लिये पाप मत करो।

* * *

ब्राह्मण तो हिन्दू समाज को आगे बड़ाने के लिये इंजन के समान हैं। आज इंजन बिगड़ जाने के कारण ही गाड़ी रुकी पड़ी है। कोई भी पथ-च्युत हो परन्तु ब्राह्मणों को तो स्वप्न में भी स्वधर्मनिष्ठा से विमुख होने की बात नहीं सोचनी चाहिये।

* * *

मत भूलो कि तुम उन महर्षियों की सन्तान हो जो बन के फल फूलों को खाकर तृण की कुटियों में निवास करते थे। परन्तु चक्रवर्ती राजा भी उनके चरणों में धक्के खाते थे।

* * *

अपने इष्टदेव में अनन्य भक्ति रक्खो , अनन्य हुए बिना इष्ट दर्शन कठिन है।

* * *

सर्व शक्तिमान भगवान की प्रतिज्ञा है कि :-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता)

अर्थात् जो मुझे अनन्य भाव से भजता है जिसके लिये योग (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त वस्तु का लक्षण) का प्रबन्ध मैं ही करता हुँ।

(३७)

जब सर्वशक्तिमान भगवान समस्त व्यवहार संचालन का भार अपने ऊपर लेने को तैयार हैं तो भी मनुष्य व्यवहार के पीछे परेशान रह कर मन को सदा व्यवहार में लगाये रहकर परमार्थ से वंचित रहे इससे अधिक अज्ञानता और मूर्खता क्या हो सकती है ?

भगवान की जब यह प्रतिज्ञा है तब तो यह प्रश्न ही नहीं हो सकता कि मन को प्रधान रूप से भगवान में लगा दें तो व्यवहार कैसे चलेगा। मन जब भगवान में लग जायगा तो व्यवहार जो

आवश्यक होगा वह अधिक उत्तम रीति से चलेगा यही उपनिषद् और गीता का सिध्हान्त है और यही भगवान के भक्तों का अनुभव भी है।

७

दुष्कर्मों से बचो और परमात्मा का चिन्तन करते चलो तो लोक परलोक दोनों बनेंगे।

* * *

गंगा स्नान से पाप नष्ट होते हैं यह गंगा की कृपा नहीं उसका स्वभाव ही है कि जो उसके जल में अवगाहन करे उसके पाप नष्ट हों।

वैद्य यदि रोगी को औषधि दे तो यह उसकी कृपा नहीं कर्तव्य ही है।

धर्माचार्य स्थान - स्थान पर जाकर जनता को सन्मार्ग पर लाने के लिए धर्मोपदेश करें तो वह उनकी कृपा नहीं कर्तव्य ही है।

* * *

लोक परलोक दोनों बनाओ।

लोक पर ही दृष्ट रखना और परलोक के सम्बन्ध में उदासीन रहना बुद्धिमानी नहीं है।

वर्तमान में सुख मिले और भविष्य अन्धकारमय बने ऐसी प्रवृत्ति मूर्खों की ही होती है।

* * *

अर्थ उसे ही मानो परम अर्थ (परमार्थ) की ओर ले जाय।

* * *

अनर्थ सम्पादन करो।

अधर्माचरण करना ही अधर्म का स्वरूप है।

* * *

(३९)

धर्म राष्ट्र का रक्षक है।

* * *

धर्म की अवहेलना करना भारी भूल है।

* * *

आहार शुद्धि पर सदा ध्यान दा।

* * *

परलोक के लिए अभी से कुछ प्रबन्ध कर चलो।

* * *

धर्म मर्यादा की रक्षा से ही सद्गति सम्भव है।

* * *

मनुष्य को सतर्क रहना चाहिये कि कहीं ऐसा कार्य न हो जाय जिसके परिणाम में पाप का संग्रह हो और परलोक बिगड़े।

* * *

प्रत्यक्ष में अभी सुख मिले और भविष्य के लिए दुःख की सामग्री बढ़े तो यह रोजगार घाटे का होगा।

शास्त्रानुसार कर्म करोगे तो ऐसा नहीं होगा।

* * *

परधन और परस्त्री प्रत्यक्ष में सुख का साधन होते हुए भी , संग्रह के योग्य नहीं है क्योंकि शास्त्र कहता है कि इससे पाप होता है और परलोक बिगड़ता है।

* * *

व्यवहार करो , परन्तु ऐसे ढंग से कि परलोक भी उत्तम बने।

* * *

अर्थ संग्रह करो , पर इस प्रकार से कि वह अर्थ , (परम अर्थ), परमार्थ का विरोधी न हो।

जो परमार्थ में बाधक हो , जिससे पाप का संग्रह हो वह अर्थ नहीं अनर्थ है।

* * *

कमाया हुआ धन तो यहीं रह जायगा किन्तु उसके साथ कमाया हुआ पाप आगे भी साथ जायगा और उसका फल अकेले ही भोगना पड़ेगा -

इसलिए ऐसे ही कार्य करो जो सुख के साधन तो हों परन्तु निरय (नरक) के उत्पादक न हों।

* * *

जो सुख का साधन हो पर निरय का उत्पादक न हो , अर्थात नरक की ओर ले जानेवाला न हो वही धर्म है।

* * *

धर्म करने से पुण्य और अधर्म करने से पाप होता है।

* * *

पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख होता है।

+ + +

किसी कर्म के करने से पुण्य और किस कर्म के करने से पाप होता है इसका निर्णय शास्त्र ही करता है।

+ + +

शास्त्र त्रिकालज्ञ महर्षियों के वेदनानुसारी अनुभव है।

+ + +

शास्त्रानुसार कर्म करने से ही लोक परलोक में सुख - शान्ति की प्राप्ति सम्भव है।

+ + +

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है -

यः शास्त्रिविधि मुत्सृज्य ,
वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति ,
न सुखं न पराङ्गतिम॥

(४१)

तस्माच्छस्त्रं प्रमाणन्ते ,
कार्याकार्योव्यवस्थितौ॥
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं ,
कर्म कर्तु मिहार्हसि॥

अर्थात् जो शास्त्रविधि का उल्लंधन करके स्वेच्छानुसार मनमाना व्यवहार करते हैं उनको न सम्यक सिद्धि होती है न सुख मिलता है न परमगति - मोक्ष - की ही प्राप्ति होती है। इसलिए कौन सा कार्य करने योग्य है और कौन सा करने योग्य नहीं है इसके निर्णय के लिए शास्त्र का प्रमाण ही मानना चाहिये। शास्त्र का विधान जान कर ही कर्म करने योग्य है।

X X X

'सत्वात्संजायते ज्ञानं'

परमात्मा सर्वत्र विराजमान है , परन्तु नेत्रहीन होने के कारण अनुभव नहीं होता। इसलिए नेत्र बनाने की आवश्यकता है।

परमात्मा कि पहचानने का नेत्र बनता है स्वधर्माचरण से और भगवान की उपासना से।

+ + +

शास्त्रानुसार कर्म करना कठिन नहीं है , बिना जाने ही लोग कठिन मान लेते हैं।

अशुभ वासनाओं को शुभवासनाओं द्वारा दबाओ और शुभ वासनाओं से किये हुये विहित कर्मों के फल को भगवद्र्पण कर दो तभी आवागमन के के चक्कर से छूट सकोगे।

+ + +

(४२)

स्मरण रखो कि , आदि की बिगड़ी तो बन जाती है परन्तु अन्त की बिगड़ी नहीं बनती - इसलिए ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि अन्त न बिगड़ने पावे।

प्रसिद्ध ही है " अन्त मती सो गती "

सिद्धान्त है कि -

यं यं वापि स्म्रन्भावं ,
त्यजत्यन्ते कलेवरम।
तं तमेवेति कौन्तेय ,
सदा सद्भाव भावितः॥

अन्त में प्राणी जिस भावना से शरीर त्याग करता है उसी के अनुकूल उसका अगला जन्म होता है। अन्त में उत्तम भावना से शरीर त्याग हो और जीव की सद्गति हो इसीलिए भगवान ने कहा है -

'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मरयुद्ध च'

यहाँ युद्ध का अर्थ है स्वधर्मानुष्ठा करना। अपने - अपने अधिकारानुसार कार्य करो और सदा परमात्मा का स्मरण रक्खो। शरीर से विहित कार्य करो और मन से परमात्मा का चिन्तन करो।

ऐसा करने से लोक परलोक दोनों बनेंगा।

+ + +

दुराचार से बचो किन्तु केवल सदाचारी होना ही पर्याप्त नहीं। सदाचारी होकर भगवान में निष्ठा बढ़ाओ तभी कल्याण है।

X + +

शास्त्र का सिद्धान्त है कि निन्दा करने वाला जिसकी निन्दा करता है उसका पाप बांट लेता है।

+ + +

(४३)

किसी की निन्दा मत करो और जो तुम्हारी निन्दा करे , उसको अपना पारमार्थिक हितचिन्तक समझो , वह तुम्हारी निन्दा करके तुम्हारे पापों को स्वयं अपने ऊपर ले रहा है।

+ + +

किसी की निन्दा मत करो और जो तुम्हारी निन्दा करे , उसको अपना पारमार्थिक हितचिन्तक समझो , वह तुम्हारी निन्दा करके तुम्हारे पापों को स्वयं अपने ऊपर के रहा है।

+ + +

दूसरों को दुःख न पहुँचाकर , दुर्जनों से सम्बन्ध न रखकर , और स्वधर्म मार्ग का उल्लंघन न करके थोड़ा भी धन मिल जाय तो उसको बहुत समझो। धनार्जन का भारतीय प्रकार यही है।

+ + +

धन से व्यवहार तो चल सकता है परन्तु मोक्ष नहीं खरीदा जा सकता। मोक्ष के लिये तो स्वयं साधन करना पड़ेगा।

+ + +

धन कमाने में कोई पाप न हो जाय इससे सावधान रहो।

+ + +

अविहित उपायों से धन संग्रह करोगे तो धन तो यहीं रह जायगा परन्तु उसके लिये किया हुआ पाप साथ जायगा और परिणाम में नरक की यातनायें अकेले भोगनी पड़ेंगी।

+ + +

जो स्वयं वासनायुक्त है वह तुम्हें वासना मुक्त कैसे कर सकता है ?

गुरु ऐसा दूंढ़ो जिसे कोई लौकिक वासना न हो।

+ + +

सुख चाहते हो तो परम सुखी परमात्मा को दूढ़ो।

+ + +

निश्चय रखो कि कार्य कभी समाप्त नहीं होंगे। सन्तोष कर लेना ही अच्छा है। सांसारिक वासनाओं को कम करते चलो और भगवान से मिलने की एक वासना को मजबूत बनाओ।

+ + +

(४४)

सांसारिक व्यवहार में विहित प्रयत्न करते चलो। जो हो जाय उसी में सन्तोष करो - जो न हो उसके लिए परेशान मत हो।

+ + +

ऊपर से व्यवहार करो और भीतर से परमात्मा में राग बड़ाओ।

+ + +

मृत्यु का वारन्ट , गिरफ्तारी का वारन्ट होता है - एक क्षण को भी मोहलत नहीं मिलेगी। आगे के लिए जो तैयारी करना है अभी से कर चलो।

+ + +

अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करो और भगवान का भजन करते चलो।

+ + +

थोड़ा - थोड़ा नित्य भगवान के भजन का अभ्यास करो। बूँद - बूँद से घड़ा भरता है।

+ + +

संसार की सुन्दरता ऐसी है जैसे ससुराल की गाली। गाली तो गाली ही है पर उसमें अच्छी भावना कर ली गई है। संसार में कुछ सुन्दर है ही नहीं पर इसे सुन्दर मान लिया गया है।

+ + +

जैसे पिता स्वयं पुत्र की सब प्रकार से रक्षा करता है ; पुत्र को कष्ट निवारण के लिए पिता से प्रार्थना नहीं करना पड़ता उसी प्रकार अपना इष्ट अपनी सब प्रकार से रक्षा करता है। उससे प्रार्थना नहीं करनी पड़ती।

+ + +

एक इष्ट पुष्ट कर लो तो कभी अनिष्ट नहीं होगा।

+ + +

बलि वैश्व देव नित्य करो।

+ + +

नित्य नैमित्तिक कर्मों को करते हुए भगवान का स्मरण करते रहो। निश्चय रक्खो कि यहाँ का कुछ भी साथ नहीं जायगा।

+ + +

भवसागर से पार होने के लिये ही मनुष्य शरीर रूपी नौका मिली है। ऐसा करो कि पार हो जाओ।

+ + +

जैसा अन्न खाओगे वैसा मन बनेगा। विहित उपायों से कमाया हुआ अन्न खाओगे तो मन बुद्धि शुद्ध रहेगी।

+ + +

अविहित उपायों से धन कमाकर खाओगे तो बुद्धि और भी मलिन होगी और अधिक अनाचार पापाचार करोगे।

+ + +

सत्संग करो परन्तु कुसंग से अधिक बचो।

+ + +

कहीं किसी दुराचारी पापाचारी से व्यवहार में काम पड़े तो उससे इसी प्रकार मिलो जैसे पाखाने में जाते हो - काम किया और हटे - वहाँ अधिक रुकने की आवश्यकता नहीं।

X X X

ज्ञान और भक्ति में परस्पर कोई भी विरोध नहीं है।

X X X

भगवान जगत में सर्वत्र है यह दृढ़ विश्वास हो जाना ही ज्ञान है और उनके स्वरूप को जानकर उनकी सेवा - पूजा करना ही भक्ति है।

X X X

किसी देवता की उपासना करो तो उससे कुछ माँगो मत। माँगने वाले को कोई अपनाता नहीं। बस इतना ही करो कि उसके हो जाओ और उसको अपना बना लो।

+ + +

किसी को अपना शत्रु मत मानो। यदि कोई विपरीत कार्य करके हानि पहुँचाने की चेष्टा करे तो यही समझो कि हमारे दुष्कर्मों का फल इसके द्वारा आ रहा है। यही मानों कि यह हमारे दुष्कर्मों का वाहन है। उसी पर चढ़कर हमारे दुष्कर्मों का फल हमारे समीप आ रहा है। जो हमारे ही कर्मों का फल वह हमारे पास ला रहा , उससे द्रोह मानना उचित नहीं।

+ + +

राष्ट्र के चरित्र बल की वृद्धि के लिए और हर तरह राष्ट्र की उन्नति के लिए देश में धर्मिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

+ + +

धर्महीन शिक्षा से इन्द्रिय लोलुप और उत्तम - विचारहीन समाज का सृजन हो रहा है।

+ + +

दर्शन और धर्म के सिद्धान्तों से अवश्य ही बालकों को परिचित कराना चाहिए , तभी देश सुखी , शान्त और समृद्धशाली हो सकता है।

+ + +

लक्ष्मीपति भगवान को अपनाओ तो लक्ष्मी तुम्हारे पीछे फिरेगी।

स्मरण रक्खो कि यदि भगवान को नहीं अपनाया और लक्ष्मी की उपासना करके उसको प्राप्त करने की चेष्टा की तो भगवान को असंतुष्ट करोगे और भगवान सन्तुष्ट नहीं रहे तो लक्ष्मी भी तुमसे सन्तुष्ट नहीं रह सकती। ऐसी परिस्थिति में यदि वह आई भी तो तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट करके चली जायगी।

८

जैसा व्यवहार दूसरों के द्वारा तुम चाहते हो वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ करो।

* * *

जो अपने समान ही समस्त प्राणियों को देखता है उसी का देखना , देखना कहा जा सकता है। वही वास्तव में नेत्रवान है।

* * *

जब तुमको कोई गाली देता है या कटुवचन कहता है तो तुमको कष्ट होता है , इसी प्रकार जिसको तुम कटुवचन कहोगे उसको भी कष्ट होगा।

* * *

ऐसा सोच कर , कभी किसी को ऐसी बात मत कहो , जिसको दूसरों के द्वारा तुम स्वयं सुनना पसन्द नहीं करते।

* * *

जितने मत - मतान्तर हैं , सब सनातन समुद्र को तरंगे हैं।

जब तरङ्ग समुद्र से बाहर जाती है तब कुछ न कुछ कूड़ा करकट संग्रह कर ही लेती प्रकार संग्रहीत कूड़ा करकट ही हैं।

* * *

इतिहास पुराणों में तपस्वियों के पतन का जो कहीं - कहीं स्पष्ट उल्लेख किया गया है उसका तात्पर्य उनकी निन्दा करना नहीं है ; किन्तु भावी सन्तान को सचेत करने के लिये ही ऐसे प्रसंगों का उल्लेख किया गया है - जिससे साधक समझ लें कि काम क्रोधादि के द्वारा किसी रीति से साधकों का पतन होता है।

जब तक यह न जानोगे कि किस रूप से पतन होता है तो पतन के मार्ग से बचने का उपाय कैसे करोगे।

* * *

पौराणिक कथाओं को पढ़कर लोग कहते हैं बड़े - बड़े महात्मा गिर गये ; परन्तु बड़े - बड़े महात्मा नहीं गिरते , साधक गिरते हैं। विद्याथी ही फेल (अनुत्तीर्ण) हो सकता है पण्डित नहीं , जो मार्ग में है वही भटक सकता है लक्ष्य पर पहुँचे हुए के लिये गिरने का प्रश्न ही नहीं आता।

यदि भर्जित (भुने हुए) बीज में अंकुर निकला हो तो सिद्धों का गिरना माना जा सकता है।

* * *

हर हालत में परमात्मा में मन को लगाओ। यह मत सोचो कि भजन करते इतने दिन हो गये अभी कुछ नहीं हुआ।

सन्देह मत करो कि भगवान का भजन कभी व्यर्थ जायगा।

* * *

सब कुछ व्यावहारिक कार्य करते हुए भी परमात्मा का स्मरण करते रहो जिसमें भगवान के भजन की ही जीवन में प्रधानता रहे।

* * *

भगवान का भजन सदा करते रहोगे तो अन्त समय में भी भगवान का ही स्मरण होगा और भगवान का कहना है कि -

अन्तोकाले च मामेव
समरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं
स याति परमां गतिम्।।

* * *

जिसको आप बुलाते हैं वह समीप में आता ही है। यदि भगवान को बुलाओगे तो ऐसा नहीं हो सकता कि वह न आयें।

* * *

(४९)

बुलाने का विधान समझकर बुलाओगे तो अवश्यमेव परमात्मा निकट आयेगा इसमें सन्देह नहीं।

* * *

मन का स्वभाव है लगना। विषयों में लगाया जाता है तो वहीं लग जाता है। भगवान में लगाया जायगा और कभी भगवान के दिव्य स्वरूप का रस मिल गया तो फिर वहीं चिपक जायगा। इसलिए मन को भगवत भजन में लगाना चाहिये।

* * *

अभ्यास करते चलो। मन भागे तो भागने दो , तुम मत उसके पीछे भागो।

* * *

मन को परमात्मा में लगाने का प्रकार है भगवान के मन्त्र का जप और स्वरूप का ध्यान करना।

'तज्जपस्तदर्थ भावनम्'

* * *

शिव , विष्णु , शक्ति सुर्य गणेश सभी भगवान के ही रूप हैं , इनमें से किसी के भी नाम का जप करो और उसी मन्त्र के अनुरूप उसके स्वरूप का ध्यान करो - यही भगवान के भजन का प्रकार है।

* * *

केवल जप करोगे तो मन यहाँ - वहाँ भागेगा।

ध्यान करने से मन बंधता है इसीलिये जप और ध्यान साथ - साथ चलाना चाहिये।

* * *

(५०)

ऊपर चढ़ने के लिये सोपान (सीढ़ी) का सहारा लेना आवश्यक होता है। सोपान को त्याग कर कोई ऊपर नहीं जा सकता। इष्ट का साक्षात्कार करने का सोपान है , गुरुपदिष्ट (गुरु के द्वारा उपदेश किया हुआ) मार्ग।

* * *

कोई इक्षु दण्ड (गन्ने का टुकड़ा) पानी में डाल कर धोये और आशा करे कि पानी मीठा हो जायगा , तो यह कैसे होगा। जल को मीठा करने के लिये इक्षुरस निकाल कर पानी में डालो।

विधान से जो काम किये जायेंगे उन्हीं से इच्छा की पूर्ति होगी।

* * *

अध्यात्मवाद की बातें किसी को भुलावा देने के लिये काल्पनिक , मन गढ़न्त बातें नहीं हैं। केवल साधन सम्पन्न न होने के कारण सिद्धि होने में देर लगती है।

साधक को प्रमाद रहित होकर सावधानी के साथ अपने मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिये।

* * *

जैसे भोजन के एक - एक ग्रास में तुष्टि , पुष्टि और क्षुत् निवृत्ति (क्षुधा की निवृत्ति) का अनुभव होता है , वैसे ही अभ्यास करने वाले साधक को नित्य अपने साधन में आगे बढ़ने का अनुभव होता है।

* * *

प्रति दिन इस बात का ध्यान रक्खो कि पुण्य कार्य अधिक से अधिक हों और पाप कम।

* * *

पाप मनुष्य के सूक्ष्म शरीर का मल है।

* * *

जैसे मल की सफाई के लिये घर में प्रति दिन झाड़ूदी जाती है वैसे ही अन्तःकरण के पाप रूपी मल की सफाई के लिये सन्ध्या वन्दन आदि नित्य कर्म बताये गये हैं।

* * *

जिनका यज्ञोपवीत संस्कार हो चुका है , उन्हें प्रमादरहित होकर नित्य सन्ध्या वन्दन करना चाहिये। सन्ध्या वन्दन करने के बाद जो इष्ट मन्त्र का जप किया जाता है उसका फल विशेष होता है।

* * *

विद्यार्थ स्वयं अपना पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं कर सकता और अपने मन की पुस्तकें पढ़ेगा तो पंडित नहीं हो सकता।

* * *

साधक अपनी उपासना का विधान स्वयं नहीं बना सकते और पुस्तकों में लिखे हुये उपासना विधानों को स्वयं चुनकर यदि उपासना करेगा तो अन्ततः सफल नहीं हो सकता।

* * *

सिद्ध के निकट ही साधक को सिद्धि होती है।

* * *

लिखा है :-

'छाया भूतौ वसेद् गुरौ'

गुरु के निकट योगाभ्यासी शिष्य को ऐसे रहना चाहिये जैसे अपने निकट अपनी छाया सदा रहती है।

* * *

गुरु शिष्य को विघ्नों से बचाते हुये और उसके अनुभवों के आधार पर उसका साधन पथ निष्कंटक बनाते हुये उसको आगे बढ़ाते हैं।

* * *

(५२)

सद्गुरु वही है जो ज्ञान विज्ञान सम्पन्न हो अर्थात् जो वेद - शास्त्रों के रहस्य का ज्ञाता हो और जिसने स्वयं साधन सम्पन्न होकर भगवान का साक्षात्कार कर लिया हो।

+ + +

सद्गुरु का एक लक्षण यह भी है कि उसे संसार के प्रति राग नहीं रहता।

ऐसे सद्गुरु को प्राप्त करके उसके बताये हुये मार्ग पर श्रद्धा विश्वास के साथ चलकर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

१

कार्य की सिद्धि के लिये उचित प्रयत्न आवश्यक है केवल इच्छा करने से कार्य की सिद्धि नहीं होगी।

+ + +

सुख शान्ति चाहते हो तो सुख शान्ति का मार्ग - अपनाना होगा। इच्छा मात्र से सुख शान्ति की प्राप्ति असम्भव है।

+ + +

जो जिसके मिलने का प्रकार है वह उसी प्रकार से मिलेगा।

+ + +

शान्ति चाहते हो तो -

निदान करो , कि अशान्ति का क्या कारण है और शान्ति का स्थान कहाँ।

* * *

शान्ति और अशान्ति दोनों सुक्ष्म शरीर (मन) में होती है।

* * *

यदि मन को ऐसा बना लो कि अनुकूल प्रतिकूल सभी परिस्थितियो में वह सदा एकरस रह सके , तो सदैव शान्ति का अनुभव कर सकोगे।

* * *

जापर कृपा राम की होई , तापर कृपा करै सब कोई।

* * *

भगवान का सहारा लोगे तो फिर और किसी के सहारे की आवश्यकता न पड़ेगी। फिर चाहे सारा संसार विमुख हो जाय तो भी कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा।

* * *

एक साधारण राजा जिस पर कृपा करने लगता है उसे राज्य भर के लोगों का सहयोग प्राप्त होने लगता है। जो जगन्नियंता सर्वशक्तिमान परमात्मा की ओर झुकता है , उसके अनुकूल जगत् के सभी लोग हो जाते हैं और प्राकृतिक शक्तियाँ भी उससे सहयोग करने लगती हैं।

* * *

भगवान की प्रतिज्ञा है कि -

अपने भक्तों के लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।

* * *

आजकल लोग साधारण (अल्पज्ञ , अल्प - शक्तिमान और स्वयं दुखी) मनुष्यों का तो विश्वास कर लेते हैं परन्तु सर्वज्ञ , सर्वशक्तिमान और परमानन्द - स्वरूप भगवान के शब्दों पर विश्वास नहीं करते।

भगवान की प्रतिज्ञा पर विश्वास करके भगवद् भक्त बनो तो लोक परलोक में सर्वत्र सदा सुखी रहोगे।

* * *

शास्त्र की आज्ञानुसार विषय भोग भी मोक्ष मार्ग में सहायक हो सकते हैं - और शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध जप तप भी मोक्ष मार्ग में बाधक है।

* * *

सर्वशक्तिमान भगवान का भक्त दुःखी नहीं रह सकता।

* * *

कुटुम्बियों की अश्रद्धा होने के पहिले ही भगवान की ओर झुक जाओ।

* * *

भगवान का भक्त होकर जीव कभी नहीं दुखी रह सकता। यह हमारा अनुभव है।

* * *

(५५)

हमने घोर जंगलों में रहकर भगवान की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता का अनुभव किया है।

जहाँ कोई भी लौकिक प्रपंच नहीं होता वहाँ भी भगवान के भक्तों के लिये समय पर सब आवश्यक प्रबन्ध हा जाता है।

* * *

भगवान सर्व समर्थ है उनका भक्त त्रैलोक्य में कहीं भी रहे आनन्द से रहेगा।

भला जो सर्वशक्तिमान है वह अपने भक्त को कैसे दुःखी देख सकेगा।

* * *

अपनी श्रद्धा , भक्ति और विश्वास के द्वारा भगवान के प्रति अनन्य होकर एक बार भगवान की कृपा प्राप्त कर लेने की आवश्यकता है , फिर तो भगवान स्वयं सब देखभाल रखते हैं उनसे प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

* * *

सुख शान्ति का उपाय बताते हुए भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है - कि शास्त्रानुसारी कर्मों के करने से ही सुख शान्ति की प्राप्ति हो सकती है।

यः शास्त्र विधि सुत्सृज्य -
वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति
न सुखं न परांगतिं॥

मन में जो अशान्ति आई है उसके लिये ऐसा उपचार करना चाहिये जो मन पर असर डाले।

* * *

मन की शुद्धि के जो प्रकार शास्त्रों में बताये गये हैं उन्हीं को कार्यान्वित करना चाहिये।

मन की शुद्धि के लिये आवश्यक है कि -

(१) आहार शुद्धि पर ध्यान दिया जाय।

(२) अपने अधिकारानुसार नित्य नैमित्तिक कर्म किये जायँ।

(३) सत्य , अहिंसा , अपरिग्रह आदि दैवी - सम्पद के लक्षणों को व्यवहारिक जीवन में घटाया जाय।

(४) सत्संग किया जाय।

(५) कुसंग से बचा जाय।

(६) भगवान का विधिवत भजन , पूजन , चिंतन नित्य कुछ न कुछ अवश्य किया जाय।

* * *

सत्संग में जो कुछ सुना जाय , उस पर मनन करना चाहिये।

मनन करने से बात मन में बैठ जाती है और जो बात मन में बैठ जाती है वही समय पर व्यवहार में काम देती है।

* * *

भगवान के नाम , रूप और लीलाओं का मनन करने में समय लगाया जाय। तो भगवान के प्रति प्रेम बढ़ेगा।

' प्रेम तें प्रकट होय मैं जाना।'

* * *

निदिध्यासन ईश्वर को प्रकट करने के लिये सुदृढ़ सोपान की अन्तिम सीढ़ी है ,

निदिध्यासन में लगे हुए साधक का मुख्य कार्य ध्यान की प्रगाढ़ावस्था ही समाधि है।

समाधि के दीर्घकालीन अभ्यास से ही जीवन्मुक्ति की सहजावस्था का उदय होता है। और इस अवस्था में - ' यत्र यत्र मनोयाति तत्र - तत्र

समाधयः। ' जहाँ - जहाँ मन जाता है वहाँ वहाँ उसे समाधि का ही अनुभव होता है। यही स्थिति आत्मनिष्ठा की पराकाष्ठा है।

* * *

ब्राह्मणों को रमानुरागी (लक्ष्मीभक्त) न होकर रामानुरागी होना चाहिये।

* * *

शास्त्र विरुद्ध पुरुषार्थ से पतन होता है। शास्त्रानुकूल आचरण से ही सद्गति सम्भव।

* * *

मनुष्य शरीर का मूल्य है भगवत्प्राप्ति जब तक की प्राप्ति नहीं हुई तब तक जीने की आशा ठीक है।

* * *

नैतिकता का स्तर उठ नहीं सकता जब तक भगवान के अस्तित्व पर विश्वास नहीं होगा।

।

१०

सुख को इच्छा से राजा , रईस , मिनिस्तर गवर्नर आदि का सहारा दूँढते फिरते हो ; समझते नहीं कि ये स्वयं ही परेशान रहते हैं और कुछ विशेष कर भी नहीं सकते। जो स्वयं दुखी है वह दूसरे को क्या सुख पहुँचा सकता है।

* * *

पहले तो अपने भाग्य पर विश्वास रक्खो ; और यदि किसी का सहारा चाहते ही हो तो उसका सहारा लो जो सर्वशक्तिमान है।

* * *

यदि किसी को प्रसन्न करना चाहते हो तो सर्वशक्तिमान परमात्मा को प्रसन्न करो , जिसकी एक बार कृपा की दृष्टि फिर जाने से आयाच्य और निर्भय हो जाओगे।

अयाच्य अर्थात् वह जिसे किसी से कभी कुछ याचना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

* * *

जिसने सुर्य , चन्द्र , नक्षत्रादि को बनाया है , जिसने पदार्थ के अणु , परिमाणु को भी अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न बनाया है , उस सर्वशक्तिमान परम पिता परमात्मा का स्मरण करो तो कभी भी दुख का अवसर न आयेगा।

* * *

' आये थे हरिभजन को , ओटन लगे कपास '।

माता के गर्भ में यह प्रतिज्ञा की थी कि हे परमात्मा ! किसी तरह से इस घोर नरक से बाहर निकालो। बाहर निकल कर सदा तुम्हारा ही ध्यान , भजन , पूजन किया करेंगे। किन्तु बाहर आकर भगवान को तो भुला दिया और संसार के शब्द , स्पर्श , रूप , रस , गन्ध आदि के चक्कर में पड़ गये।

स्मरण रक्खो कि समय पूरा होने पर माता के गर्भ में जाकर वही नरक फिर भोगना पड़ेगा। ऐसा कुछ करो कि फिर वह नौबत न आये तो अच्छा है।

* * *

अपना कोई इष्ट न बना सकने के कारण ही लोग दुःख और दरिद्रता की चक्की में पिसते रहते हैं।

जैसे पिता के रहते हुए बच्चा कभी अनाथ नहीं होता बिना कहे ही पिता स्वाभाविक रूप से पुत्र की कठिनाइयो का निवारण करता है , वैसे ही इष्ट भी अपने उपासक की सदा ही रक्षा करता रहता है।

* * *

उपासना की विधि अनुभवी गुरु से पूछना चाहिए। प्रायः लोग पुस्तकों को पढ़कर , माहात्म्य देख कर जैसी - तैसी उपासना प्रारम्भ कर देते हैं। महीनों उपासना करने पर जब कोई फल नहीं दिखाई देता तो साधन छोड़कर बैठ रहते हैं और कभी - कभी तो अपना विश्वास भी खो बैठते हैं।

साधन के सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिये कि अविहित साधनों से प्रायः अनिष्ट हो जाता है , कोई भी कैसी भी साधना हो बिना गुरु से समझे हुए प्रारम्भ नहीं करनी चाहिये।

* * *

मायापति भगवान के अनुकूल हो जाने से माया के क्षेत्र की समस्त शक्तियाँ अपने अनुकूल बर्तने लगती हैं।

* * *

(६०)

वैसे तो मनुष्य स्वतन्त्र है , अपनी बुद्धि के अनुसार जो ठीक समझे वह कर ही सकता है (स्वतन्त्रकर्ता) - उचित कार्य करके वह अपनी , अपने समाज और देश की उन्नति कर सकता है और अनुचित कार्य करके स्वयं पतन के गर्त में गिर सकता है और अपने समाज और देश को भी कलंकित कर सकता है।

शास्त्र के द्वारा उचित या अनुचित समझ लो और जो ठीक समझो वही करो।

* * *

जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल मिलेगा बबूल का बीज बोने से आम खाने को नहीं मिलेगा , कांटे की चुभेंगे।

* * *

मनुष्य अल्पज्ञ है , उसे एक क्षणा भी आगे की बात का पता नहीं कि क्या होने वाला है ; इसलिये क्या उचित है और क्या अनुचित यह मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार निश्चित नहीं कर सकता। उचितानुचित और कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय शास्त्र से ही प्राप्त किया जाता है।

वेद शास्त्रानुसारी बुद्धि ही मान्य हो सकती है। स्वतन्त्र बुद्धि का कोई मूल्य नहीं।

* * *

वेद शास्त्र बदलते नहीं हैं और मनुष्य की बुद्धि क्षण - क्षण में बदलती रहती है।

भौतिक विज्ञान (साइन्स) के सिद्धान्त मनुष्यों की बुद्धि की उपज होने के कारण सदा बदलते रहते हैं। बदलते हुए सिद्धान्तों के आधार पर जीवन चलाया जायगा तो धोखा ही धोखा है।

अपौरुषेय सनातन वेद और वेदानुसारी शास्त्रों के आधार पर ही , सत्यासत्य और उचितानुचित का निर्णय किया जा सकता है।

शास्त्रानुसारी मार्ग पर जीवन की गाड़ी चलाने से ही मनुष्य लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

* * *

(६१)

शिक्षा संस्थाओं के सूत्रधारों के हाथ में देशवासियों की सुख - शान्ति निर्भर है।

जैसी शिक्षा होती है वैसा ही देश का मस्तिष्क निर्माण होता है।

* * *

शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि बालकों का मस्तिष्क इस प्रकार का बने कि अनुकूल प्रतिकूल सभी परिस्थिति में उनका मानसिक सन्तुलन न बिगड़ने पाये।

ऐसा होने पर ही देश स्थायी सुख - शान्ति का अनुभव कर सकेगा।

* * *

जगत् की परिस्थितियाँ तो प्रारब्धानुसार बनती बिगड़ती रहेंगी। परिस्थितियों पर नियन्त्रण करना कठिन है। किन्तु अपने मन को ऐसा बना लेना अपने अधिकार की बात है कि वह सभी परिस्थितियों में एकसा रहे।

यह तभी सम्भव है जब मन व्यवहार में अधिक फँसा न रहकर परमात्मा के प्रति झुके।

* * *

संसार के सभी पदार्थ नष्ट हो जानेवाले हैं। इनका वियोग निश्चित है , जिसका वियोग हो जाना ध्रुव है , उसके द्वारा स्थायी सुख - शान्ति की प्राप्ति की आशा करना और उसकी प्राप्ति के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहना मूर्खता ही है।

* * *

सूर्य के उदय होने पर प्रकाश और चन्द्रमा के उदय होने पर शीतलता बिना माँगे ही मिलती है।

परमात्मा का उद्घाटन हो जाने के बाद सुख - शान्ति स्वाभाविक रूप से प्राप्त होती है।

* * *

(६२)

परमात्मा तो हमारे निकट से निकट है , परन्तु काम , क्रोध , मोह , लोभ आदि का पदा पड़ गया है , इसीलिये उसे हम देख नहीं पाते।

जीव और ब्रह्म को अलग रखनेवाले इस पर्दे को नष्ट करने के चार उपाय हैं - (१) सत्संग (२) वासना त्याग (३) अध्यात्म विद्या का विचार

(४) प्राणायाम इनमें से एक को भी भली प्रकार पकड़ लो तो काम पूरा हो जायगा।

* * *

धर्महीन शिक्षा से भारत का सर्वनाश हो रहा है।

* * *

सतर्क रहो कि इन्द्रियाँ मन को अविहित विषय भोग के लिये प्रवृत्त न कर दें।

* * *

अपने विवेक को सदा जागृत रक्खो। यह न भूलो कि पाप का फल दुःख होता है। सदैव शास्त्र के आधार पर पुण्य पाप का निदान करो।

* * *

पुण्य करो , पाप से बचो और अपने मन को व्यवहार में अधिक न फँसाकर परमात्मा में लगाओ।

दिन भर बालू को पेरिये एक बूँद भी तेल प्राप्त नही हो सकता।

महीनों जल का मन्थन किया जाय , कभी भी नवनीत नहीं निकलेगा।

जहाँ से जो वस्तु निकल सकती है वहीं पर वैध प्रयत्न करने से अभीष्ट की प्राप्ति सम्भव होती है।

भौतिकवाद में कभी भी किसी को शान्ति का अनुभव नहीं हो सकता। शान्ति का आधार आध्यात्मिकता ही है , भौतिकता नहीं।

भौतिकवाद के सहारे शान्ति प्राप्त करने की आशा उसी प्रकार है जैसे तेल के लिए बालू को पेरना और मक्खन के लिए पानी का मन्थन करना।

* * *

(६३)

संसार सागर से पार होने के लिए शरीर - रूपी नौका मिली है , यह नौका सदा अपने अधिकार में रहने वाली नहीं है। जब तक यह अपने अधिकार में है , तब तक ऐसा प्रयत्न करो कि इसके द्वारा भवसागर से पार हो जाओ।

* * *

जब तक शरीररूपी नौका अपने हाथ में है तब तक इसका सदुपयोग करो। यदि समय का मूल्य न किया तो जब इसके छोड़ने का समय आयेगा तो निराधार होकर चारों तरफ रोते फिरोगे।

उस समय कोई सहायक न होगा , और निश्चय है कि एक मिनट की भी मोहलत नहीं मिलेगी ; नौका हाथ से छूट जायेगी और फिर न जाने कब तक संसार समुद्र में निराधार होकर डूबते उतराते हुए जन्म - मरण की घोरातिघोर यातनायें भोगनी पड़ें।

* * *

शरीर से विहित कार्य करो , अविहित कार्य न करो।

* * *

मन में अच्छे विचार लाओ और जिन्हें समझते हो कि बुरे हैं उनसे मन को बचाओ।

* * *

मन के द्वारा सद्विचार और शरीर के द्वारा सदाचार का पालन करो।

* * *

इंद्रियों के उद्रेक को विचार के द्वारा रोको।

११

जिसको तिसको गुरु नहीं बनाना चाहिये। कहावत प्रसिद्ध है -

पानी पीजै छान कर , गुरु कीजै जान कर।

* * *

शास्त्र द्वारा परमात्मा का स्वरूप जानने को ज्ञान कहते हैं और परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर लेने को विज्ञान।

ज्ञान विज्ञान सम्पन्न अर्थात् श्रोत्रिय , ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष ही गुरु बनाने योग्य हैं।

* * *

जो समय बीत रहा है वह फिर लौट कर नहीं आयेगा।

* * *

बिना सद्गुरु के साधन फलवती नहीं होती।

* * *

अनुभवी गुरु की खोज करो।

* * *

ऐसा करो कि अन्त समय में पछताना न पड़े।

* * *

विश्व को स्वास्थ्य लाभ कराने के लिए अपने को जिम्मेवार मानने वाले आयुर्वेद शास्त्र के प्रणेता चरक और सुश्रुत का मत है कि धर्म - भावना की प्रखरता रहने से ' प्रकृति - साम्य ' स्थापित रहता है। और जब अधर्म भाव बढ़ता है तब प्रकृति वैषम्य ' हो जाता है , अर्थात् तीनों गुण विषम अवस्था में हो जाते हैं जिससे समाज में कलह , विद्रोह , द्वेषभाव , अतिवृष्टि , अनावृष्टि , अकाल तथा नाना प्रकार की व्याधियों द्वारा दुःख और अशान्ति बढ़ती है।

* * *

(६५)

एक बार अनन्य होकर भगवान को भज लो तो जन्म - जन्म की दरिद्रता दूर हो जायगी , जीवन में सुख - शान्ति का अनुभव होगा और यहाँ से चलकर भी आनन्द ही रहेगा इसलिए -

जगत् को मन से हटाओ और ईश्वर को अपनाओ।

* * *

मोह - निद्रा के भंग होने पर ही जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है।

* * *

सत्संग करते रहने से मोह छूट जाता है।

* * *

गुलाब के पुष्प के सम्पर्क से क्यारी की मिट्टी भी गुलाब की सी सुगन्ध देने लगती है। वैसे हा विषयी पामर लोग भी यदि महात्माओं के सत्संग में रहे तो धीरे - धीरे उनमें भी विवेक और भगवद्भक्ति जागृत होने लगती है।

विवेक और भक्ति के जागृत होने पर माया - मोह का आवरण हटने लगता है।

* * *

बादलों से तो स्वच्छ जल बरसता है पर भूमि का स्पर्श होते ही मैला हो जाता है।

गर्भ में जीव भगवान का भजन करने की प्रतिज्ञा करता है किन्तु बाहर निकलते ही माया में लिप्त हो जाता है।

* * *

जिसने विश्वनियन्ता परमपिता परमात्मा में अपने मन को लगा दिया , उसके लिए किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता।

विश्व का रक्षक जिसका रक्षक हो , भला उसका कौन कुछ बिगाड़ सकता है ?

* * *

(६६)

रामनामरूपी अमृत जो पान कर रहा है उसको किसी प्रकार का कोई दुःख और व्याधि नहीं आ सकती।

* * *

श्रद्धा विश्वासपूर्वक सच्चे हृदय से एक बार भी भगवान का नाम ले लोगे तो भवसागर से पार हो सकते हो , सांसारिक दुःख दरिद्रता का हटना तो साधारण बात है।

* * *

निश्चय रखो कि भगवान का भक्त कभी दुखी नहीं रह सकता।

भगवान का होकर कोई दुखी रहे यह हो ही नहीं सकता।

१२

मत भूलो कि यहाँ से एक दिन अवश्य ही चलना है""""""""।

जब रहना नहीं है तो यहाँ राग मत बढ़ाओ।

व्यवहार में केवल शिष्टाचार करते चलो।

* * *

चाहे धोखा खा जाओ , पर किसी को धोखा मत दो।

धोखा खा जाओगे तो भी भाग्य नहीं समाप्त होगा।

किसी को धोखा दोगे तो बुद्धि भ्रष्ट होगी , यहाँ भी अशान्ति रहेगी और परलोक भी बिगड़ेगा।

* * *

सत्संग का प्रभाव उतनी जल्दी नहीं पड़ता , जितना कुसंग का पड़ता है।

कुसंग से बचने के लिए सतर्क रहो।

* * *

अभी तक लापरवाही से जो पाप हो गये सो हो गये , परन्तु अब आज से सतर्क हो जाओ।

नित्यमपूर्वक भगवान का भजन - पूजन आरम्भ कर दो तो पिछले पाप धीरे - धीरे नष्ट हो जायँगे और बुद्धि शुद्ध होती जायगी ; आगे भी पाप से बचोगे।

* * *

शक्तिशाली बनना चाहते हो तो सर्वशक्तिमान की शरण में आओ।

* * *

ऐसा मत सोचो कि हमारे इस कार्य को कोई नहीं जानता। जिसके हाथ में सत्कर्म दुष्कर्म का लेखा है वह सर्वज्ञ है और तुम्हारे भीतर बाहर की हर बात को जानता है।

* * *

जैसे - जैसे भगवान की उपासना करोगे वैसे - वैसे शान्ति सन्तोष का अनुभव होगा।

* * *

केवल बीजक के अध्ययन से कोई धनी नहीं बन सकता , जब तक बीजक के अनुसार खनन करके धन प्राप्त न कर लिया जाय।

वेद और शास्त्र परमात्मा की प्राप्ति के लिये बीजक के समान हैं ; और वेद - शास्त्र की आज्ञानुसार जप , ध्यान आदि के द्वारा परमात्मा को प्रत्यक्ष करना निधि का खनन करना है।

* * *

ज्ञान विज्ञान के समन्वय से ही स्थायी सुख शांति की प्राप्ति होगी।

+ + +

शास्त्रीय सिद्धान्तों को अपने आचरण में लाये बिना केवल वाचिक ज्ञान तो ' तोता - रटन्त ' के समान है।

+ + +

ऐसा नहीं करना कि अपने लौकिक अर्थ के लिए कोई पाप कर बैथो।

+ + +

शब्द ऐसे निकालो जो किसी को आघात न करें।

+ + +

कोई भी कार्य करो , उचितानुचित विचार कर करो।

+ + +

इन्द्रियों पर नियन्त्रण रक्खो।

+ + +

रागी यदि जंगल में भी जाय तो वहाँ भी उसे फँसाने वाली वस्तुओं का अभाव नहीं होगा।

मन पर अधिकार रखने वाला संयमी घर पर ही रहे तो वही उसके लिए तपोवन है।

+ + +

अकेले मन पर अधिकार कर लो तो अलग - अलग इन्द्रियों पर अधिकार करने की झंझट ही मिट जाय।

X X X

मन रूपी ड्राइवर (चालक) के अधिकार में (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मन्द्रियाँ रूपी) दस मोतरों। ड्राइवर जिस मोटर में बैठता है वही मोटर चलती है , बाकी बेकार खड़ी रहती हैं। ड्राइवर के अधिकार में है कि चाहे जिस ़ओटर को जब चाहे चलाये। ड्राइवर को अपने अधिकार में कर लेने से अपने अधिकार में दसों मोटरों आ जायँगी।

एकहि साधै , सब सधै'।

X X X

संसार की चकाचौंध में पड़कर भूलो मत कि वह दिन आ रहा है जब यहाँ से चलना ही पड़ेगा।

X X X

जगत् से अलग होना असम्भव है। जगत् में रहते हुए ही इसके स्वरूप को समझ लेना चाहिये।

X X X

जगत् मदारी के बनाये हुये रुपये की तरह मिथ्या है।

जिस प्रकार मदारी के बनाये हुये रुपये को देखकर कोई भी उसे उठाने की इच्छा नहीं करता उसी प्रकार क्षणभंगुर मिथ्या संसारी वस्तुओं से अपना लगाव मत रखो।

X X X

(७०)

संसार में व्यवहार करो पर उसे सत्य न मानो ; भीतर मन में उसका स्थान मत बनाओ।

* * *

संसार में पदार्थ बाधक नहीं - ईश्वरीय सृष्टि बाधक नहीं - उसके साथ बनये हुए अपने सम्बन्ध बाधक हैं। इसलिये अपनी मानसिक सृष्टि मत बनाओ।

* * *

किसी वस्तु की इच्छा हो तो उसकी प्राप्ति के लिए विहित उपायों को अपनाओ।

* * *

क्षुद्र सिद्धियों के फेर में जीवन का बहुमूल्य समय न गँवाओ।

* * *

समस्त सिद्धि समूह अपने परम कल्याणकारी भगवत्प्राप्ति के मार्ग में बाधक है।

* * *

जब साधक के पास सिद्धियाँ आती हैं तभी यह निश्चय होता है कि उसका साधन मार्ग ठीक है और वह उन्नति कर रहा।

* * *

जिसके साधन में विघ्न न आयें और साधन करते करते जिसके पास सिद्धियां न आयें उसे समझना चाहिये कि उसके साधन विधान में कहीं कुछ कमी है।

* * *

सात्विक सुख की प्रप्ति में काम , क्रोध आदि आन्तरिक शत्रु ही बाधक हैं। विहिताचरण और भगवच्चिन्तन के द्वारा इन्हें दबाकर रखने से सात्विक सुख की अनुभूति होती है।

* * *

(७१)

गृहस्थों को इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिये , क्योंकि उन्हीं के समीप विषय सामग्री रहती है।

शास्त्रानुकूल विषय सेवन ही गृहस्थों के लिए इन्द्रिय निग्रह का अभ्यास है।

* * *

ऐसे को गुरु बनाओ जो पक्षपात शून्य हों - वेद शास्त्रानुसार ही जो उपदेश करते हों।

* * *

गुरु का काम है शिष्य को भवसागर से पार करना।

* * *

उपासक की अपने इष्टदेव में अनन्य भक्ति होनी चाहिए।

* * *

जिसको इष्ट बनाओ उसे सर्वत्र देखो।

* * *

कोई भी स्थान ऐसा नहीं जहाँ तुम्हारा इष्ट न हो।

* * *

जब तक इष्ट के प्रति अनन्य भावना नहीं बनेगी तब तक इष्ट दर्शन कठिन है।

* * *

सन्यासी द्विजोत्तम होता है। द्विज अपने कर्तव्य से च्युत हो तो द्विजोत्तम का यह कर्तव्य है कि उसे स्वधर्मानुष्ठान में आरुढ़ करें।

* * *

किसी रोग को हटाने के लिए औषधि और पथ्य दोनों की आवश्यकता होती है।

मन की चंचलता रूपी व्याधि को नष्ट करने के लिए औषधि है अभ्यास , और पथ्य है वैराग्य।

* * *

(७२)

अपने इष्टदेव में मन को लगाना ही अभ्यास है।

इष्ट का चिंतन , उन्हीं का ध्यान , उन्हीं के सम्बन्ध में बात करना उन्हीं का चिन्तन निरन्तर करते रहना यही अभ्यास का स्वरूप है -

तत्कथनं तच्चिन्तनं,
अन्योन्यं तत्प्रबोधनम्।
एतदेक परत्वंच,

ब्रह्माभ्यासं चतुर्विधाः॥
उन्हीं का चिंतन करते रहो।

विषयों से उपेक्षापूर्वक भगवान का ध्यान स्मरण चिन्तन करना चाहिये।

* * *

औषधि खाओ और कुपथ्य करते जाओ तो लाभ कैसे होगा ? भगवान का ध्यान चिन्तन कथन करना तो औषधि सेवन है और अनाचार , पापाचार , दुराचार आदि अविहिताचरण और विषयभोग की इच्छा इस मार्ग का कुपथ्य है।

* * *

विषयों की उपेक्षा ही वैराग्य है।

* * *

जब मन इष्ट में लग जाता है तो वैराग्य पीछे - पीछे फिरता है। इसलिए हम तो यही कहते हैं कि रागी बनने की आवश्यकता है। अर्थात् मन इष्ट के प्रति राग उत्पन्न करने की आवश्यकता है।

* * *

मन से इष्ट का स्मरण कभी भूले नहीं , यही राग का लक्षण है। इष्ट में राग बड़ेगा तो जगत् में विराग स्वाभाविक हो जायगा।

* * *

(७३)

यदि इष्ट में राग नहीं हुआ और जगत् से विरागी बनने लगे तो अशान्ति ही भोगनी पड़ेगी।

* * *

बुद्धि शोधन के लिये प्रयत्न पहिले करो और पीछे धन - संग्रह के लिए।

* * *

सन्तान का गर्भाधान संस्कार विधान से कराओ और बाकी संस्कार भी समय पर विधिपूर्वक होना चाहिये।

* * *

संतान की बुद्धि शुद्ध करने का ध्यान यदि प्रारम्भ से ही न रखा गया तो आगे चलकर पछताना ही हाथ रहता है।

जैसा बीज बोओगे वैसा ही काटोगे।

* * *

मन की वृत्ति में ही महात्मापन होता है। जहाँ हो वहीं रहते हुए मन की धारा को बदलो , संसार का चिन्तन कम करो और परमात्मा का चिन्तन बढ़ाओ।

* * *

मुख्य चिन्त्य (चिन्तन करने योग्य) परमात्मा ही है।

* * *

संसार में व्यवहार तो करो परन्तु यह निश्चय रखो कि वह चिन्त्य नहीं अचिन्त्य है।

अचिन्त्य को चिन्त्य मान लिया गया है इसीलिए सुख - शान्ति का अनुभव नहीं हो रहा है।

* * *

प्राण का पोषण करो और उसे परमात्मा में लगाओ।

यदि प्राणों का रक्षक केवल सांसारिक कार्यों और विषय - भोगों के लिए है तो वह लोहार की धौंकनी ही है।

चरित्र ही मनुष्य का सब्से बड़ा धन है।

* * *

चरित्रहीन के लिए कहा जाता है - 'यतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः।' लोक में जो पतित हुआ वह परलोक में भी अधोगति को प्राप्त होता है।

* * *

उत्तम शिक्षा से ही उत्तम चरित्र निर्माण होता है।

* * *

कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध धर्म - शास्त्र ही कराता है। धर्महीन शिक्षा के द्वारा लोगों को कर्तव्या - कर्तव्य का बोध नहीं हो रहा है , स्वेच्छाचारिता बढ़ती जा रही है और राष्ट्र का चरित्रबल गिरता जा रहा है।

* * *

धर्म यही सिखलाता है कि , किस कार्य को कैसे करें कि उसका फल अपने लिए और समाज के लिए लाभदायक हो।

* * *

स्वधर्म का ठीक बोध न होने के कारण ही स्वेच्छाचारिता और चरित्रहीनता की वृद्धि होती जा रही है।

* * *

धर्महीन शिक्षा का ही फल है कि यह बुद्धि प्रायः लोप हो गई है कि पाप करेंगे तो नरक की यातनायें भोगनी पड़ेंगी। यही कारण है कि लोग प्रत्यक्ष में इन्द्रिय भोग सामग्री के साधन ' अर्थ ' को ही सब कुछ समझने लगते हैं।

* * *

धर्महीन शिक्षा से राष्ट्र का चरित्रबल क्षीण हो रहा है।

* * *

ऐसा धन - संग्रह मत करो -

जिसके द्वारा जीवन में अशान्ति और परलोक में नरक हो।

* * *

धर्मानुसारी अर्थ संग्रह ही कल्याणकारी होता है।

* * *

रुपया पैसा सब यहीं पड़ा रह जायगा।

* * *

संग्रह इस प्रकार होना चाहिये कि उससे सुख - शान्ति की प्राप्ति हो सके।

कहीं ऐसा न हो कि हमारा कमाया हुआ रुपया दुःख और अशांति - प्रद हो जाय।

* * *

अधर्म , असत्य और अनाचार , दुराचार आदि अविहित उपायों द्वारा कमाये हुए धन का परिणाम दुःख और अशान्ति हो होता है।

* * *

जो धन सत्य और धर्म के आधार पर कमाया जाता है उसी के द्वारा सुख - शान्ति का अनुभव होता है। इसलिए यदि धन के द्वारा सुख चाहते हो तो धनार्जन में सत्य और धर्म का आधार लो।

* * *

जो अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए सच झूठ और न्याय - अन्याय पर विचार नहीं करते और उसके फल की भी चिन्ता नहीं करते , ऐसे ही लोगों के द्वारा समाज में अनाचार , भ्रष्टाचार फैलता है।

* * *

जब तक मनुष्य में धर्मबुद्धि रहती है तब तक तो वह पाप करने से डरता है और पुण्य करने की चेष्टा करता है। परन्तु जब उसको धर्म

का बोध ही नहीं है तब वह अपनी बुद्धि के ऊपर किसी का नियन्त्रण ही नहीं मानता।

* * *

सर्वकल्याणकारी वेद शास्त्र के अनुशासन को भूलकर मनुष्य इन्द्रियों का गुलाम् होकर क्षणभंगुर विषय सुखों के लिये अनाचार , भ्रष्टाचार आदि करता हुआ अपना भविष्य अन्धकारमय बना रहा है। यही अपने हाथों अपने मार्ग में कण्टक बोना है।

X X X

जब तक मनुष्य को स्वधर्म और उसके द्वारा सद्गति का बोध नहीं होगा तब तक लाख उपाय करने पर भी फैलता हुआ भ्रष्टाचार नहीं रोका जा सकता।

X X X

ऋषि - प्रणीत मर्यादा ही भारतीय जीवन शैली का अधिष्ठान है।

X X X

पाश्चात्य देशवासियों को अपनी सभ्यता पर भले ही गर्व हो पर , धर्मावलम्बी भारतीय उनकी आसुरी चकाचौंध से मोहित नहीं हो सकते।

X X X

जो माता , पिता और गुरुजनों के चरणों में श्रद्धा - भक्ति से नत - मस्तक होकर प्रातःकाल और सायंकाल अभिवादन अर्थात् प्रणाम करता है और जो वृद्ध जनों की सेवा का सदा ध्यान रखता है उसकी आयु , विद्या , यश (कीर्ति) और बल (शारीरिक बल) की वृद्धि होती है।

X X X

दूसरे में नहीं ,

अपने में दोष देखो तो कल्याण होगा।

X X X

चरित्रवान मनुष्य ही लोक - परलोक में शान्ति का अनुभव कर सकता है।

X X X

जो चरित्र भ्रष्ट है उसे लोक में ही शान्ति नहीं रहती , परलोक में उसके लिए शान्ति की बात ही क्या ?

+ + +

अपने में ढूढो कि कौन - सी बुराई अभी तक बाकी है। जो हो उसे हटाने का प्रयत्न करो।

+ + +

पुरस्कार के योग्य का पुरस्कार और तिरस्कार के योग्य का तिरस्कार करो।

+ + +

चरित्रहीन लोगों से कथा वार्ता सुनना , सत्संग करना वैसे ही है जैसे वेश्या के मुख से गीत गोविन्द सूरसागर सुनना।

+ + +

गंगाजल पान करना है तो शुद्ध धारा से लो , नाबदान से गंगाजल वह कर आये तो उसके पीने का विधान नहीं है।

* * *

यदि उपदेशक चरित्रवान है तब तो उसको बात सुनो।

चरित्रहीन के शब्दों में केवल राग - रागिनी में मुग्घ हो जाना उसकी चरित्रहीनता को बढ़ाने में सहयोग देना है।

* * *

जो भगवान का भजन करता है उसका चरित्र उत्तम होना चाहिये। यदि चरित्रहीन है तो समझ लो कि भगवान का भक्त नहीं ; लोगों को धोखा देने के लिए ऊपर से भक्ति का हाव - भाव दिखाता है।

ऐसे धोखेबाज लोगों से स्वयं बचो अपने सम्पर्क की भोली - भाली धार्मिक जनता को भी बचाओ।

* * *

शक्तिशाली होकर सम्मानित जीवन व्यतीत करो। शक्तिहीन का सर्वत्र अपमान होता है।

* * *

मनुष्य का शरीर मिला है पुरुषार्थ करके बलवान बनो।

* * *

दूसरे के दोषों का चिन्तन करोगे तो उसको तो कोई लाभ नहीं होगा , उल्टे दूसरे के दोष तुम्हारे मन में घुसेंगे।

* * *

ऐसा काम करो कि कम से कम अपनी रक्षा तो रहे। अपनी रक्षा का ध्यान न किया तो जैसी आँधी आयेगी उसी में उड़ जाओगे।

* * *

नित्य सायंकाल विचार करो कि आज हम में कितने गुण आये और कितने दोष छूटे।

अपने दोषों को देखने लगोगे तो फिर धीरे - धीरे दोष अपने आप छूटने लगेंगे।

* * *

दोषों के सम्बन्ध में पहले अपनी चिन्ता रखो ; दूसरे की बात सोचना अपने लिए घातक है। पहले अपनी रक्षा करो बाद में दूसरे की चिन्ता।

* * *

स्मरण रखो कि तुम उन्हीं महर्षियों की सन्तान हो जो संसार में सब कुछ करने में समर्थ थे। अपने संकल्प से दूसरी सृष्टि रच देने की सामर्थ्य उनमें थी उन्हीं की सन्तान होकर आज चारों तरफ से दुःख और अशान्ति से घिर रहे हो।

अपने घर की निधि को भूल जाओगे तो फिर दरवाजे - दरवाजे ठोकर तो खानी ही पड़ेगी।

* * *

शेर यदि भेड़िये के झुण्ड में जाकर में - में करने लगे और उसी में सुख मानने लग जाय तो यह उसके लिए कितनी लज्जा की बात होगी।

* * *

भारतीय यदि अपनी पुरानी आध्यात्मिक और आधिदैविक सम्पत्तियों को भूल जायँ और ऊपरी शब्द , स्पर्श , रूप , रस , गन्ध आदि की भौतिक सामग्री को प्राप्त करके ही सुख सन्तोष मान लें तो यह उनका कितना बड़ा पतन है।

* * *

शक्तिशाली बनने के लिए अपने पूर्वजों के अनुभूत नुसखों से काम लो।

* * *

सर्वशक्तिमान जगन्नियन्ता की शरण में आओ और अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करो।

* * *

जगन्नियामिका चेतन सत्ता का अधिकार प्राप्त करो , तभी वास्तव में शक्तिशाली बन सकते हो और वही स्थिर शक्ति सत्ता होगी।

* * *

निश्चय रखो कि आज भी तुम त्रिकालदर्शी और तत्वविजयी होकर समस्त ब्रह्मांड की शक्तियों को अपने अनुकूल कर सकते हो।

* * *

भारत में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुममें अनन्त शक्तियाँ निहित हैं। प्रयत्न करके उनका उद्घाटन करो और शक्तिशाली होकर उन्नत मस्तक होकर रहो।

* * *

भगवान् का भक्त -

काल पर भी शासन करता है।

* * *

(८०)

भगवद्भक्त को कौन जीत सकता है ?

* * *

निन्दा करने से किसी का सुधार तो होता नहीं ; व्यर्थ में उसे अपना शत्रु बना लेते हैं - - मूर्खतावश अपने ही पैरों में चुभने के लिये कण्टक वपन करते हैं।

* * *

शास्त्रों में लिखा है कि निन्दक जिसकी निन्दा करता है उसके पाप ग्रहण करता है। भला कितनी बड़ी मूर्खता है कि पाप तो कोई और करे और हम उसकी निन्दा करके उसके पापों का संग्रह अपने लिये करें।

जिसमें दूसरों का सुधार भी न हो और अपना बिगाड़ हो , ऐसा काम क्यों करते हो ?

* * *

जिस पर भगवान की कृपा हो जाती है उस पर भगवान की शक्ति - माया - की भी कृपा रहती है।

* * *

भक्त माया से अपना कोई सम्बन्ध नहीं चाहता और न माया की शक्तियों की इच्छा करता है ; वह तो अपने इष्ट भगवान के ही चिन्तन में निमग्न रहता है। माया की शक्तियाँ ऋद्धि सिद्धि के रूप में आकर सदा भक्त की इच्छा पूर्ण किया करती हैं और सदा उसको सब प्रकार से रक्षा करती हैं।

* * *

जो सर्वशक्तिमान का प्रिय भक्त हो जाता है। उसके अनुकूल सब कुछ हो जाता है। शास्त्र से यही प्रमाणित है और भक्तों का भी यही कहना है।

* * *

(८१)

भगवद्भक्त अजेय होता है। न वह किसी के द्वारा पराजित होता है और न कोई उसको जीत सकता है।

* * *

यहाँ तो धर्मशाले का निवास है ; अपने मन को बहुत फँसाने लायक नहीं साधारण रूप से काम चलाते चलो और दृष्टि आगे की यात्रा पर रक्खो। धर्मशाले के प्रबन्ध में अपने को बहुत फँसा लेना मूर्खता ही है।

* * *

चार दिन के जीवन में बहुत हाव - भाव करना अच्छा नहीं।

* * *

जब तक सांस चल रही है भगवान् का भजन करते हुये समय बिताओ।

* * *

मन में यदि व्यवहार घुस गया तो बार - बार इसी चौरासी के चक्कर में घूमना पड़ेगा। इसलिये बड़ी सतर्कता से काम करो।

* * *

व्यवहार में मन को अधिक फँसाओगे तो अन्त में व्यवहार ही याद आयेगा।

अन्त में व्यवहार याद आया तो फिर जन्म लेना पड़ेगा।

* * *

जीवन भर जिसमें मन अधिक लगा रहेगा वही अन्त समय में भी याद आयेगा।

यदि स्त्री का ध्यान रहा तो मरते समय स्त्री का ही स्मरण होगा और फिर मरकर स्त्री होना पड़ेगा। यदि पुत्र का ध्यान रहा तो मरकर उसका पुत्र होना पड़ेगा।

+ + +

संसार में सद्गति चाहते हो तो सतर्क होकर व्यवहार चलाओ जहाँ तक हो सके मन को बचाओ।

+ + +

धन और दूसरी संसारी वस्तुओं की प्राप्ति के लिये लोग कितना अथक प्रयत्न करते हैं - दिन रात एक कर देते हैं , परन्तु जिस भगवान की प्राप्ति से सब कुछ सहज सुलभ हो जाता है उसके लिए उचित प्रयत्न नहीं करते। कितना बड़ा अविवेक छाया है !!

+ + +

इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है कि सुख शांति के कारण सर्वशक्तिमान भगवान की ओर ध्यान न देकर तुच्छ संसारी वस्तुओं के लिए दिन रात परेशान रहे।

+ + +

भगवान की अवहेलना करके अन्य वस्तुओं की प्राप्ति के लिए चेष्टा करते हो तो जो कुछ भी प्राप्त होगा तो वह इतना न होगा कि सन्तोष दे सके।

+ + +

छाया को भी पकड़ना चाहते हो तो असली रूप को पकड़ो। यदि रूप को छोड़कर छाया को पकड़ना चाहोगे तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। इसी तरह यदि सांसारिक सुख चाहते हो तो भी भगवान का भजन करो। भगवान के भजन से लौकिक सुख और पारलौकिक शांति बोनो प्राप्त होंगी।

जीवन में सबसे मूल्यवान वस्तु समय है , जिसना समय भगवान के भजन में लगाओगे उसका कई गुना मूल्य ब्याज सहित अदा हो जायगा।

+ + +

जो आया है सो जायगा , यहाँ किसी को रहना नहीं है।

+ + +

मृत्यु का वारन्ट गिरफ्तारी का वारन्ट होता है , उसमें फिर अपील की गुञ्जाइश नहीं होती ; तुरन्त सब कुछ छोड़कर चलना पड़ेगा ; जो जहाँ है वहीं पड़ा रह जायगा।

+ + +

हर समय यहां से चलने के लिए बिस्तर बाँधे तैयार रहो न जाने किस समय वारन्ट आ जाय , पहले से तैयार रहोगे तो चलते समय कष्ट नहीं होगा।

+ + +

जो हर समय संसार छोड़ने के लिये तैयार रहता है उससे कभी कोई पाप नहीं होता।

+ + +

परलोक को भूल जाने से ही दुराचार पापाचार होता है।

+ + +

यदि हर समय यह स्मरण रहे कि यह सब कुछ एक दिन छोड़कर चलना ही है तो फिर मनुष्य असत्य और अविहित आचरण को कभी न अपनाये।

+ + +

कोई काम ऐसा न करो जिसके लिए बाद में पछताना पड़े।

* * *

संसार में मनुष्य के लिए असम्भव कुछ नहीं है।

* * *

पुरुषार्थ हो और उचित अर्थात् वैध पुरुषार्थ हो तो कौन सा ऐसा कार्य है जो सिद्ध न हो जाय।

* * *

जहाँ पुरुषार्थ है वही सफलता है।

* * *

प्रबल पुरुषार्थ के समक्ष प्रारब्ध भी घटने टेक देती है। इसलिये विहित ढंग से पुरुषार्थ करना ही अपना कार्य है।

* * *

यदि पुरुषार्थ करने पर भी कहीं सफलता न मिले तो भी कार्य को असाध्य नहीं मानना चाहिए।

X X X

असाध्य कुछ भी नहीं है , यह हो सकता है कि बैल का भार बकरी के लिए असाध्य मालूम पड़े परन्तु ऊँट के लिए वह असाध्य नहीं।

किसी पुरुषार्थहीन बलहीन मनुष्य के लिए कोई कार्य चाहे असाध्य लगता हो परन्तु पुरुषार्थवान सबल पुरुष के लिये संसार में असम्भव कुछ नहीं है।

१४

जब तक संसार के मिथ्यात्व का बोध नहीं होगा , तब तक भोगों से वैराग्य होना असम्भव है।

+ + +

भगवान की निष्काम उपासना करो और विचार द्वारा राग - द्वेष को दूर करते चलो।

तुम्हारी श्रद्धा देख कर भगवान स्वयमेव कृपा करेंगे।

+ + +

भगवान की कृपा से तुम्हारा मोह - जनित अज्ञान दूर होकर उसमें दृढ़ अनुराग उत्पन्न होगा।

जब तक मन भोगों के लिए बेचैन रहता है तब तक गृहस्थधर्म का पालन करते हुए विहित भोगों को भोगो।

+ + +

यदि स्त्री में सुख मानते हो तो अपनी स्त्री में ही सन्तुष्ट रहो दूसरी ओर दृष्ट न दौड़ाओ।

+ + +

व्यवहार संचालन के लिए धन की आवश्यकता है तो सदाचार पूर्वक धन का उपार्जन करो।

* * *

अपना खान - पान पहिनाव अपनी आय के अनुकूल रखो तो कभी चिन्तित नहीं होना पड़ेगा।

* * *

(८६)

किसी को पीड़ा न देते हुए सात्विक परिश्रम द्वारा प्राप्त किये हुए धन का उचित उपयोग करो। इससे बुद्धि शुद्ध होगी और मन में शान्ति रहेगी।

X X X

सदाचार का पालन करते हुए जितना समय मिले सज्जनों और महात्माओं का संग करो।

सदाचारी व्यक्ति ही दूसरों का कल्याण कर सकता है।

+ + +

स्वधर्म पालन एक ऐसी वस्तु है जो सबका सभी परिस्थितियों में कल्याण कर सकती है।

जो जहाँ जिस वर्णाश्रम में है उसी के अनुसार स्वधर्म पालन करे तो उसका सब प्रकार से कल्याण होकर रहेगा।

वह अपने जीवन - काल में शान्ति का अनुभव करेगा और परलोक में भी उसकी सद्गति होगी।

+ + +

वेद शास्त्रानुसारी क्रिया - कलाप की यही विशेषता है कि इससे इहलोक में व्यक्तिगत एवं सामाजिक सुख शान्ति मिलती है और परलोक में भी सद्गति होती है।

+ + +

जो जिस वर्णाश्रम में हो वहीं अपने धर्म का दृढ़ता से पालन करके देखो - सुख शान्ति का अनुभव अवश्य होगा।

X X X

जो कुछ धर्म का पालन कर लोगे , जो कुछ भगवान का भजन - पूजन चिन्तन कर लोगे वही आगे साथ देगा और उसी के आधार पर संसार में भी सुख शान्ति और समृद्धि की प्राप्ति होगी।

X X X

(८७)

भगवान के भजन में लाभ ही लाभ हैं - थोड़े दिन विधिवत् उपासना करके देखो स्वतः अनुभव हो जायगा।

यदि थोड़े दिन उपासना करने पर शान्ति सन्तोष में वृद्धि नहीं होती तो समझ लो कि उपासना का प्रकार कुछ गड़बड़ है।

* * *

उपासना करने के लिए ऐसे को ही गुरु बनाओ हो वेद शास्त्र को मानता हो और उपासना मार्ग का भी अनुभवी हो।

* * *

भगवान का भजन नित्य कुछ समय अवश्य करो।

+ + +

हर समय रोटी - कपड़े की ही चिन्ता में मत पड़े रहो। चौबीस घण्टों में कम से कम दस - बीस मिनट अवश्य ही भगवान् के भजन - पूजन में लगाओ।

+ + +

यह समझ लो कि सब काम बीस पचास वर्ष तक ही , जब तक जीवन है तभी तक , के प्रबन्ध के लिए है , इससे आगे यह सब प्रबन्ध कुछ काम नहीं देगा।

+ + +

कुछ ऐसा भी कर चलो कि जब यहाँ से चलना हो तो खाली हाथ न जाना पड़े।

+ + +

अपने समान दूसरे को भी मानो।

+ + +

इस बात के लिए सतर्क रहो कि तुमसे किसी का अपकार न हो जाय।

+ + +

(८८)

कभी किसी को अपनी ओर से कष्ट देने की बात मत सोचो। जहाँ तक हो सके दूसरों की भलाई करो।

+ +

चार दिन का जीवन है , इसमें ऐसा करो , कि जहाँ तक हो सके दूसरों की भलाई हो। और यदि भलाई न हो सके तो कम से कम किसी की बुराई तो न हो।

+ + +

अपने द्वारा किसी का बिगाड़ हुआ तो अपने ही ऊपर उसका पाप पड़ेगा।

+ + +

जहाँ तक हो सके शुभकर्म करो जिससे पुण्य का पलड़ा भारी रहे।

पुण्य अधिक रहेगा तो लोक - परलोक में सर्वत्र आनन्द से रहोगे।

+ + +

" वर्तमान भौतिकवाद ने जीवन को जटिल बनाते हुए केवल उदर परायणता और काम वासनाओं की वृद्धि की है।

+ + +

रात - दिन पेट भरने की चिन्ता में लगे रहना और पेट भर कर इन्द्रियों के विषयों को भोगने में लग जाना और इन्हीं बातों में जीवन समाप्त कर देना मानव - जीवन का घोर दुरुपयोग है।

+ + +

तीर्थों में पापाचरण करने वाले की महान दुर्गति होती है।

+ + +

वेद - शास्त्र भगवान की आज्ञा है। यदि सुख - शान्ति चाहते हो तो उसकी आज्ञा का पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है।

+ + +

भरण - पोषण करने का भार स्वयं ईश्वर के ऊपर है , इसीलिए उसे विश्वम्भर कहते हैं। उसी की शरण में जाने पर दुःखों से छुटकारा होगा।

+ + +

वेद - शास्त्र के अनुसार जीवन बनाना ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है।

X X X

स्वरूपाकार वृत्ति होते ही सुख - दुख इत्यादि द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं।

X X X

ठग लोग साध वेष अपनाकर सच्चे साधुओं की बड़ी रक्षा करते हैं , जैसे गुलाब के पुष्पों को कण्टक रक्षा करते हैं।

X X X

भारत भूमि में सद्गुरुओं की परम्परा कभी समाप्त नहीं हुई।

पहचानने वाली आंखों न होने के कारण यदि ईश्वर भी तुम्हारे सामने आयें तो तुम्हारा कुछ कल्याण नहीं हो सकता।

+ + +

१५

परमात्मा को सर्वत्र मानोगे तो फिर तुमसे कोई पाप कर्म नहीं होगा इसलिए परमात्मा को व्यापक मानते हुए चरित्रवान बनो। अपने आचरणों में पवित्रता लाओ , अपनी भावनाओं को शुद्ध बनाओ और स्वधर्मानुकूल व्यवहार करो तो अन्तःकरण पवित्र होगा। अन्तःकरण की पवित्रता बढ़ने से तुम्हारे संकल्प में बल आयेगा , कार्य भी अधिक सुदृढ़ होंगे और परमात्मा में भी निष्ठा बढ़ेगी। परमात्मा में निष्ठा बढ़ने से हर प्रकार का मंगल होगा। इसलिए ऐसा ही मार्ग अपनाओ जिससे सब प्रकार का मंगल हो - लोक परलोक दोनों बने।

* * *

परमात्मा सर्वज्ञ है - वह सबके कर्मों को जानता है , इसलिए कोई पाप कर्म मत करो। ऐसा मत सोचो कि हमारे इस कार्य को कोई नहीं जानता। जिसको तुम्हारे कर्मों का फल देना है , जो फैसला करने वाला है वह बिना गवाही के ही सब कुछ जानता है। यदि किसी से डरना ही है तो पाप करने से डरो , कोई बुरा कर्म मत करो।

+ + +

जो अपने समान ही समस्त प्राणियों को देखता है उसी का देखना देखना कहा जा सकता है। वही वास्तव में नेत्रवान है।

+ + +

जब तुमको कोई गाली देता है या कटुवचन कहता है तो तुमको कष्ट होता है इसी प्रकार जिसको तुम कटुवचन कहोगे उसको भी कष्ट होगा , ऐसा सोच कर कभी किसी को ऐसी बात मत कहो जिसको दूसरों के द्वारा तुम नहीं सुनना चाहते। जैसा व्यवहार दूसरों के द्वारा तुम चाहते हो वैसा ही व्यवहार तुम भी दूसरों के साथ करो।

+ + +

कभी किसी की निन्दा मत करो। निन्दा करने से किसी का सुधार तो होता नहीं , व्यर्थ में उसे अपना शर्त्र बना लेते हैं।

+ + +

शास्त्रों लिखा है कि निन्दक जिसकी निन्दा करता है उसके पाप ग्रहण करता है। भला कितनी बड़ी मूर्खंता है कि पाप तो कोई और करे और हम उसकी निन्दा करके उसके पापों का संग्रह अपने लिए करें। जिसमें दूसरों का सुधार भी न हो अपना बिगाड़ हो , ऐसा काम क्यों करते हो ?

+ + +

नदी जब तक समुद्र में नहीं मिल जाती तब तक वह पत्थरों और पहाड़ों से टकराती रहती है। समुद्र में मिल जाने के बाद उसको ठोकर देने वाला कोई नहीं रह जाता। इसी प्रकार जीव जब तक परमात्मा से नहीं मिला है तभी तक उसे अनेकों आधि व्याधियों का सामना करना पड़ता है।

परमात्मा के मिलने का मार्ग भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं बताया है।

तस्मात् सर्वेधु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

अर्थात् सदैव चलते - फिरते , उठते - बैठते , सोते - जागते , स्वधर्मानुष्ठान में लगे रहो और मेरा स्मरण करते चलो।

+ + +

जिसकी जो ' सीट ' है उस सीट पर उसको बैठना चाहिए। अपने - अपने स्थान पर ही सब चीज अच्छी लगती है। महिलाओं को चाहिए कि भगवान की भक्ति तो करें पर कहीं ऐसा न कर बैठें कि भक्ति के पीछे अपने पतियों का त्याग कर दें। भावावेश में बहना ठीक नहीं ,

काम वह करना चाहिये जा कुछ दिन चले। दूरदर्शिता से काम लेना चाहिये। जिस प्रकार सद्गुरु के प्रसन्न होने पर इष्ट को प्रसन्नता प्राप्त होती है उसी प्रकार पति के प्रसन्न रहने पर स्त्री पर देवी देवता और भगवान भी कृपा करते हैं और हर प्रकार से मंगल होता है। यही हमारे भारत का पुराना अनुभूत नुसखा है।

+ + +

हनुमान जी ने भगवान की हर प्रकार की सेवा की , पर उसके बदले में कुछ नहीं चाहा। दास्य भाव को अपनाते हो तो हनुमान को उदाहरण में लो। निष्काम भक्ति का यही स्वरूप है , इष्ट के निमित्त कार्य करो और उसके फल रूप में अपने लिये किसी वस्तु की याचना न करो।

+ + +

शास्त्रानुकूल पुरुषार्थ ही पुण्य है और वही अभ्युदय अर्थात् लौकिक उन्नति और मोक्ष का देने वाला है

+ + +

इष्ट प्रीत्यर्थ काम करना चाहिये। इष्ट प्रसन्न रहे यही एक वासना हो। ऐसा नहीं कि शंकर जा को एक लोटा जल चढ़ाया और प्रार्थना में कहने लगे कि लड़के की नौकरी लग जाय , स्त्री की तबियत ठीक हो जाय या धन की कमी है रोजगार में वृद्धि हो जाय। इस प्रकार की संसारी वासनाओं को लेकर इष्टाराधन करते हो तो इष्ट भी घबराता है। क्योंकि याचक से सभी दूर भागते हैं।

+ + +

जो काम जितने पुरुषार्थ से होने वाला है उतने ही पुरुषार्थ से होता है। जितने पुण्य से भवसागर से पार हो सकते हैं उतने पुण्य के बिना पार होना असंभव नहीं। किसी को एक सेर जल की प्यास लगी हो तो वह एक छटांक जल से कैसे बुझ सकती है।

+ + +

(९३)

धर्मिक ग्रन्थों के पढ़ने से पुण्य अवश्य होता है। गीता रामायण आदि का पाठ पुण्यप्रद होता है परन्तु केवल पाठ से इतना पुण्य संग्रह नहीं होता जो भवसागर से पार कर दे।

+ + +

जब तक लोगों का स्वार्थ सिद्ध होता है तभी तक सब मान - सम्मान और अनुराग दिखाते हैं। भगवान आदि शङ्कराचार्य ने कहा है -

यावत् वित्तोपार्जन सक्तः
तावन्निज परिवारो रक्तः।
पश्चाद्धावति जर्जर देहे
वार्ता कोऽपि न पृच्छति गेहे॥

अर्थात् जब तक धन कमाने की सामर्थ्य है तभी तक अपने स्वजन कुटुम्बी लोग भी अनुराग करते हैं। फिर जब बृद्धावस्था आती है और शरीर जीर्ण - शीर्ण हो जाता है तब कोई घर में बात नहीं पूछता।

+ + +

वशिष्ठ , विश्वामित्र , भारद्वाज , अत्रि , अंगिरा जमदग्नि आदि त्रिकालज्ञ सर्व समर्थ महर्षियों के नाम आप लोग आज भी बड़े गौरव के साथ लेते हो। उनके नाम पर अपने गोत्र बताते हुये गौरव का अनुभव करते हो। किन्तु वे सर्व समर्थ थे और आज उनकी सन्तान होकर आप लोग सर्वथा शक्तिहीन हो रहे हो। क्या कभी अपनी इस दीन दशा पर विचार भी करते हो ? आज भी अपने पूर्वजों के मार्ग पर चलकर आप अपना उत्कर्ष साधन कर सकते हैं।

+ + +

जिस सोपान का सहारा लेकर इन लोगों ने भगवान को प्राप्त किया और इतना सामर्थ्य सम्पादन किया , उसी सोपान का सहारा लेकर आप लोग चलोगे तो निश्चय है कि वही सिद्धि समाधि आपको भी प्राप्त होगी। आज भी आप लोगों के शरीरों में उन्हीं का रक्त है और पथ -

(९४)

प्रदर्शक वही प्राचीन गुरु परम्परा आज भी पूर्ववत् उपलब्ध हैं। केवल अपनी ओर से कमी है।

+ + +

सन्तान के लिए धन संग्रह करने में आप लोग जितना प्रयत्न करते हैं उसका आधा प्रयत्न भी यदि बुद्धि शुद्ध करने के लिए करें तो बहुत लाभ हो।

बुद्धि शुद्ध रही तो धन कम रहते हुए भी सन्तान सुख शान्ति का अनुभव कर सकती है और यदि बुद्धि दूषित रही तो अनन्त धन धान्य रहते हुए भी दुर्वासनाओ में पड़कर सन्तान दुःख और अशान्ति ही भोगेगी। इसलिये बुद्धि शोधन के लिए प्रयत्न पहले करो , पीछे धन संग्रह करो।

सन्तान का गर्भाधान संस्कार विधान से कराओ और बाकी संस्कार भी समय पर होने चाहिए। द्विज वर्ण को अपने बालकों के विधिवत् उपनयन संस्कार कराने के बाद सन्ध्या गायत्री में अवश्य लगाना चाहिए। भगवान के जप ध्यान से ही बुद्धि की मलिनता दूर होती है।

+ + +

सन्तान को बुद्धि शुद्ध करने का ध्यान यदि प्रारम्भ से ही न रखा गया तो आगे चलकर पछताना ही हाथ रहता है। जैसा बीज बोओगे वैसा ही तो काटोगे।

* * *

चरित्रवान मनुष्य ही शान्ति का अनुभव कर सकता है। जो चरित्र भ्रष्ट है उसे न तो लोक में ही शान्ति रहती है और न परलोक में ही। दूसरों की बुराइयाँ मत देखो , अपने में ढूँढो कि कौन - सी बुराई अभी तक शेष है जो हो उसे हटाने का प्रयत्न करो। अपने में दोष खोज - खोजकर निकालोगे तो कल्याण होगा।

* * *

(९५)

कभी भी किसी के दोषों का चिन्तन मत करो। दूसरों में दोष ढूँढने से अपना भी अन्तःकरण मलिन होता है। पाप कोई करे और उसका चिन्तन हम करें यह तो हमारे लाभ की बात नहीं। जब हम स्वयं पाप करने से डरते हैं तो दूसरे के पापो का चिन्तन करके अपने मन को पापी क्यों बनायें ?

* * *

मनमानी करना हो तो पहले मन को शुद्ध बनाओ मन को शुद्ध बनाने के लिए सत्संग , जप , पूजा , पाठ भगवच्चिन्तन तथा शास्त्राभ्यास उपयोगी माने गये हैं।

* * *

प्राणायाम से भी मन की चंचलता दूर होकर मन पवित्र होता है। किन्तु इसका साधारण अभ्यास तो करने में कोई हानि कि शंका नही परन्तु यदि कुछ विशेष अभ्यास करना हो तो बिना किसी अच्छे योगी का सहारा लिये इस मार्ग में हानि की ही अधिक सम्भावना रहती है। अविधिपूर्वक प्राणायाम से अनेकों प्रकार के रोग हो जाते हैं। इसलिए विचारपूर्वक ही इसका अभ्यास करना चाहिये।

* * *

मन की शुद्धि के लिए आहार शुद्धि भी अत्यन्त आवश्यक है द्रव्य की कमाई का प्रकार उचित ही होना चाहिए। अविहित मार्गों से कमाये हुए धन के उपभोग से मनमलिन होता है।

-।-

१६

गुरु और गोरू शब्दों थोड़ा ही अन्तर है। गुरु की शिष्य के कल्याण पर दृष्टि रहती है और गोरू केवल अपनी भोजन - सुविधा से ही सम्बन्ध रखता है। जो गुरु शिष्यों से केवल अन्न - वस्त्र और भेंट - विदाई से ही सम्बन्ध रखते हैं , उनकी बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते और उन्हें परमार्थ - दर्शन नहीं करा सकते वे शिष्यों के गुरु नहीं , गोरू ही हैं। शिष्यों को चाहिये कि अपने गुरुओं के चारा - पानी का प्रबन्ध तो अवश्य करें , किसी के लिए अन्न -वस्त्र का प्रबन्ध करना बुरा नहीं है ; परन्तु अपने कल्याण का मार्ग उसी से लेना चाहिये जिसमें गुरु के सब लक्षण विद्यमान हों। लक्षण - सम्पन्न गुरु की खोज करनी चाहिये।

शास्त्र में गुरु के दो प्रधान लक्षण लिखे हैं : श्रोत्रियता और ब्रह्मनिष्ठता। लिखा है - "तद्विज्ञानार्थस गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठ" तत्पदवाच्य जो ब्रह्म है उसके जानने के लिए ऐसे गुरु के पास जावे जो श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हों ; क्योंकि श्रोत्रिय अर्थात् वेद - वेदार्थ के जानने वाले होंगे तो शिष्य की शंकाओं का समाधान कर सकेंगे और ब्रह्मनिष्ठ होंगे तो तर्क अस्त होने पर यथार्थ बोध (तत्व का अनुभव) भी करा सकेंगे।

* * *

किसान वही अच्छा माना जाता है जिसका स्वयं का हल - बैल हो और बोने के लिए घर में बीज भी हो ; क्योंकि वही परती बंजर को ठीक से जोत कर क्षेत्र तैयार करके समय पर बीज वपन कर सकता है। यदि घर में बीज न हुआ तो बीज का प्रबन्ध करते करते जमीन फिर खराब

हो जायगी। इसी प्रकार गुरु यदि केवल श्रोत्रिय हैं तो वे शिष्य की शंकाओं और तर्कों का समाधान तो कर देंगे , परन्तु यथार्थ बोध नहीं करा सकते ; क्योंकि उनको स्वयं तत्व - बोध नहीं है। इसलिए सफल गुरु वही है जो शिष्यों की शंकाओं का यथार्थ समाधान देकर उसके तर्कों का अन्त करके परम लक्ष्य का बोध करा सके। इसीलिए गुरु के लिए श्रोत्रियता और ब्रह्मनिष्ठता - दो प्रधान विशेषण कहे गये हैं।

* * *

आज कल लोग परमात्मा को ही अन्धा बनाते हैं। साधारण सांसारिक लोगों की आँख बचा कर कुत्सित कर्म करते हैं और सोचते हैं कि कोई नहीं जानता। सर्वान्तरात्मा जगन्नियन्ता भगवान तो सर्वत्र हैं , सभी के सब प्रकार के व्यवहारों को हर समय देख रहे हैं ; उनको दृष्ट से बचाकर कभी कोई काम नहीं किया जा सकता। इसलिए यदि वास्तव में अच्छे बनना चाहते हो तो ऐसा प्रयत्न करो कि उनकी दृष्टि में कोई कुत्सित कर्म न आने पावे। संसारियों की दृष्टि में अच्छे बने रहना और चुपचाप कुत्सित कर्म करते जाना दूसरों को धोखा देना नहीं , अपने आपको धोखा देना है। इससे मनुष्यों का घोर पतन होता है।

* * *

अनेकों इच्छाओं का संयम करके एक प्रबल इच्छा प्रवाहित करो। वह इतनी बलवती होगी कि उसकी गति को रोकने वाला (उसका बाधक) स्वयं उसमें बह कर उसका सहयोगी हो जायगा।

* * *

जैसी वासना धन के लिए है , पुत्र के लिए है , इष्ट मित्र और अन्न - वस्त्र के लिए है वैसे ही यदि परमात्मा के लिए हुई तो इतनी कमजोर वासना से परमात्मा कैसे मिलेगा ? स्त्री - धन - पुत्र - इष्ट मित्रादि से परमात्मा बहुत विशिष्ट है ; इसलिए उसको प्राप्ति के लिए उसी कोटि की उत्कृष्ट वासना उत्पन्न करना चाहिये।

* * *

बछड़े का दुग्ध - पान का भाव व्यक्त होते ही वात्सल्य के कारण जिस गाय के सर्वांग से आकृष्ट हो दुग्ध - स्तन में एकत्रित होकर उसे प्राप्त होता है , उसी प्रकार भक्त के भावों से आकृष्ट होकर व्यापक परमात्मा की शक्ति प्रतिमा आदि में केन्द्रित होकर उसे प्राप्त होती है।

देव प्रतिमा में देवत्व (दैवी - शक्ति) लाने के लिए और उसके द्वारा उपासकों के कल्याण के लिए चार बातें प्रधानतः आवश्यक हैं ; तथा -

(१) देवताओं का स्वरूप जैसा शास्त्रों में वर्णन किया गया है ठीक उसी के अनुसार प्रतिमा का होना ;

(२) शास्त्रीय विधानों द्वारा प्रतिमा की प्रतिष्ठा का किया जाना ;

(३) प्रतिष्ठा होने के पश्चात् यथाविधि जप , पाठ पूजन , हवन आदि द्वारा देव - मूर्ति की पूजा होना ; और

(४) देव - स्थान में शास्त्र - विरुद्ध व्यवहार और निर्माता की इच्छा के विरुद्ध कार्यों का न होना।

इन चारों बातों का जितनी उत्तम रीति से पालन होता है उतनी ही अधिक देव - प्रतिमायें दैवी - शक्ति - सम्पन्न होंगी और उपासकों का उतना ही अधिक कल्याण होगा , इन बातों की जितनी उपेक्षा होती है उतनी ही मूर्तियाँ दैवी कलाहीन हो जाती हैं।

* * *

पूजक अपनी तप - शक्ति , भावना और पूजन की विशेषताओं द्वारा देव - प्रतिमाओं में अधिकाधिक दैवी - शक्ति की बुद्धि कर सकता है और उसी के द्वारा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

* * *

जहाँ देव - मूर्तियों में विधिवत् अर्चन , पूजन , वन्दन आदि होता है वहाँ सदा ही मंगल रहता है , सुख - सम्पदा की वृद्धि होती है और सब प्रकार से अभ्यदय प्राप्त होता है।

* * *

जिन देवालयों में मूर्तियों की प्रतिष्ठा द्विज जातियों द्वारा की गई है उनमें अन्त्यजों के मन्दिर - प्रवेश से स्पर्श - दोष के कारण मूर्ति और मन्दिर दूषित हो जाते है। शास्त्र में प्रमाण मिलते हैं इस प्रकार प्रतिमाओं के दूषित होने से उनमें दैवी शक्ति का ह्रास हो जाता है और इन देवत्व - विहीन प्रतिमाओं में भूत , प्रेत आदि का वास हो जाता है तथा इन भूत - प्रेत - निवसित प्रतिमाओं के पूजन से देश में भूकम्प - अग्नि - प्रकोप , रोग , दुर्भिक्ष , राजा प्रजा का क्षय आदि अनिष्ट होते हैं।

* * *

आस्तिक समाज को चाहिये कि अपने और सब के कल्याण के लिए अभी तक दूषित हुए मन्दिरों की शास्त्र - विधानों से पुनः प्रतिष्ठा कर विधिवत् पूजन आदि की व्यवस्था करे। दूषित प्रतिमाओं के पूजन से लाभ के बदले हानि ही होती है। किन्तु , यह निश्चय है कि अपने सामने देव - मन्दिरों की मर्यादा भंग होते देख कर भी यदि आस्तिक - समाज चुप रहता है तो उसे इस घोर पाप का फल भोगना पड़ेगा।

द्विज जातियों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्तियों के पूजनादि का अधिकार अन्त्यज आदि को नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि शास्त्र में अन्त्यज और शूद्रों के कल्याण की अवहेलना की गई है। केवल भगवन्नाम - स्मरण और कीर्तन मात्र से ही कितनों को परमगति प्राप्त होने के प्रमाण पुराणों में पाये जाते हैं। और , धर्मशास्त्र का यह निदान है कि द्विज जातियों को स्नान , संध्या आदि करके पवित्रतापूर्वक जप , तप करते हुए शास्त्रोक्त और पूजन - सामग्री आदि से सम्पन्न होकर देव - पूजन करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है वही पुण्य अन्त्यज आदिकों को मन्दिर के कलश , स्तूप और ध्वज को सभक्ति प्रणाम करने मात्र से सहज में ही प्राप्त होता है। इस प्रकार धर्म - शास्त्र में सभी के कल्याण के लिए उपाय बताये गये हैं। अधिकारी भेद से किसी के उपाय सरल हैं और किसी के कठिन।

* * *

(१००)

शास्त्र की आज्ञा मान कर अपने अधिकार के अनुसार आचरण करने से ही कल्याण हो सकता है। मनमाना दुराग्रह करके वेद - शास्त्र की अवहेलना करने से किसी का कल्याण नहीं होगा ; इसलिए अपने कल्याण की कामना करने वाले को सतर्क होकर करने योग्य कार्य करना चाहिये।

* * *

मृत्यु से डरा मत ; क्योंकि एक दिन अवश्य ही मरना है। जितने क्षण जी रहे हो सतर्क होकर कार्य करो। कहीं कोई ऐसा कार्य न हो जाय कि मरते समय उसके लिए पश्चाताप हो।

* * *

सच्चा मरना वही है कि फिर जन्म न हो। स्वधर्माचरण रत भगवद् - भक्तों का मरण ऐसा ही होता है।

* * *

गो - रक्षा का प्रश्न हिन्दू - धर्म , जीवन और समाज - रक्षा का प्रश्न है। इसकी अवहेलना अधिक समय तक होना देश के कल्याण में घातक है। प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है कि गो - पालन और गो - रक्षण के लिए तत्पर रहे और भारतीय शासन - सत्ता का भी महान कर्तव्य है कि गो - वंश की उन्नति लिए अधिकाधिक प्रयत्न करे।

प्रार्थना

वन्देऽहं यतिराजराजरमणं योगीन्द्रचक्रायुधं ,
चातुर्वर्ग्यफलप्रदं सुविहितं मोक्तच्छटाच्छदितम्।
योगानन्दतरंगतानतननं त्रैलोक्यनाथं शिवं ,
ब्रह्मानन्दसरस्वतीं गुरुवरं ज्योतिर्मठाधीश्वरम्॥१॥
साक्ताद्ब्रह्मपदारविन्दयुगलं पैशल्यकल्लोलकं ,
नैष्कर्म्याद्यखिलेश्वरं कृतिमतामानन्दधारान्वितम्।
ध्यानज्योतिरखण्डखण्डवरणैरद्वैतमानन्त्यकं ,
ज्योतिष्पीठमहेशरं गुरुवरं प्रयक्तदेवं भजे॥२॥
सर्वानन्दकरं महाप्रभुवरं साक्ताच्छिवं सात्विकं ,
लोकनाममुपकारकं निगमतो मार्गप्रभोद्दीपकम्।
शान्तं दान्तमपीह सर्वजगतां तापत्रयोन्मूलनं ,

वन्दे तं गुरुदेवदेवसदनं ज्योतिर्मठाधीश्वरम्॥३॥
शास्त्रे साधुकथासुधा सुललिता कैवल्यनैर्गुण्यिका ,
सर्वानन्दकरी सुरत्नरसनालावण्यलीलाम्बुधिः।
राराजीति विशिष्टभावगहना यस्य प्रसादाद्भुवि ,
ब्रह्मानन्दसरस्वतीं गुरुवरं प्रत्यक्षदेवं भजे॥४॥

(१०२)

यद्द्वारे निखिला निलिम्पपरिषत्सिद्धिं विधत्तेनिशं ,
श्रीमच्छ्रीलसितं जगद्गुरुपदं नत्वात्मतृप्तिं गताः।
लोकाज्ञानपयोगपाटनधुरं श्रीशंकरं शर्मदं ,
ब्रह्मानन्दसरस्वतीं प्रभुवरं ध्यायामि ज्योतिर्मयं॥५॥

धर्म की जय हो , अधर्म का नाश हो

प्राणियों में सद्भावना हो

विश्व का कल्याण हो

हर हर महादेव

*

LIFE & TEACHINGS OF
SWAMI BRAHMANANDA SARASWATI
SHANKARACHARYA OF JYOTIRMATH (1941-1953) Vol. III

by

PAUL MASON

GURU DEV

AS PRESENTED BY

MAHARISHI MAHESH YOGI

Translation of अमृत-कण Amrit Kana, the Hindi discourses of Guru Dev compiled by Brahmachari Mahesh (later known as Maharishi Mahesh Yogi), with notes, transcription of Devanagari text & transliteration of Sanskrit quotations. Also included are transcripts of Maharishi speaking on Guru Dev and about his philosophies, with additional complementary material, including transcripts and translations of the Acharya Vandana Puja & the '108 Names of Guru Dev'.

234mm x 156mm, 336 pages on quality coated paper - 35 illustrations.

ISBN 978-0-9562228-2-4

More Information

Statcounter